जैन धर्म की कहानियाँ

भाग 18

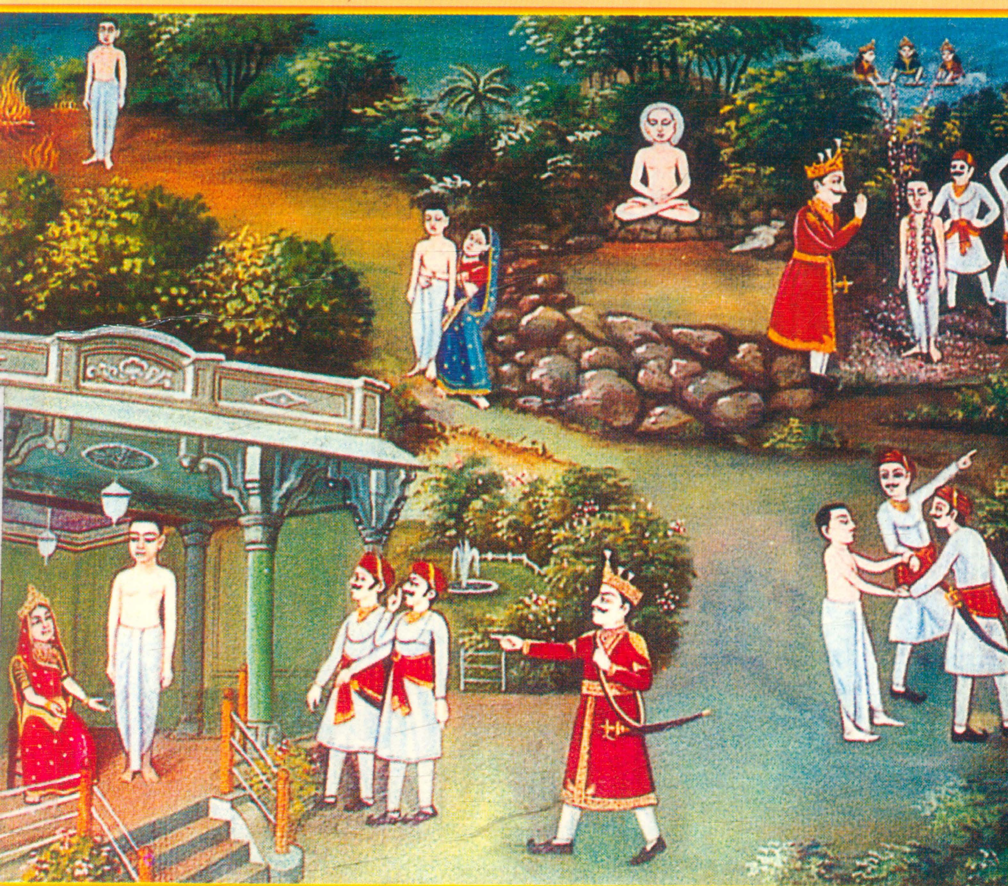

प्रकाशक :

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन-सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला संक्षिप्त परिचय

श्री खेमराज गिड़िया

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया

जिनके विशेष आशीर्वाद व सहयोग से ग्रन्थमाला की स्थापना हुई तथा जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य प्रकाशित करने का कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा है, ऐसी इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् 1919 चांदरख (जोधपुर)

पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : मात्र प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।

सत्-समागम : सन् 1950 में पूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : मात्र 34 वर्ष की उम्र में सन् 1953 में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली।

परिवार : आपके 4 पुत्र एवं 2 पुत्रियाँ हैं। पुत्र – दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल एवं प्रेमचंद। तथा पुत्रियाँ – ब्र. ताराबेन एवं मैनाबेन। दोनों पुत्रियों ने मात्र 18 वर्ष एवं 20 वर्ष की उम्र में ही आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर सोनगढ़ को ही अपना स्थायी निवास बना लिया।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने। सन् 1959 में खैरागढ़ में जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभ हस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया। सन् 1988 में 25 दिवसीय 70 यात्रियों सहित दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं अनेक सामाजिक कार्यों के अलावा अब व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना में बिताते हैं।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का २६ वाँ पुष्प

ॐ

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग-१८)

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४२५० (सौराष्ट्र)

1 (~ ~ / ~ ~)

— प्रथम आवृत्ति —

2200 प्रतियाँ

卐

24 से 27 अप्रैल, 2007

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जिनमन्दिर खैरागढ़

का जीर्णोद्धार पूर्वक

वेदी प्रतिष्ठा एवं स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

के मांगलिक प्रसंग पर प्रकाशित

© सर्वाधिकार सुरक्षित

न्यौछावर : सात रुपये मात्र

मुद्रण

जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर

मोबाइल : 094147-17816

फैक्स : 0141-2709865

प्राप्ति स्थान

अ. भा. जैन युवा फैडरेशन

शाखा-खैरागढ़

श्री खेमराज प्रेमचंद जैन,

'कहान-निकेतन' खैरागढ़-४९१८८१

जिला-राजनाँदगाँव (छत्तीसगढ़)

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर,

जयपुर-३०२०१५ (राजस्थान)

ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन

'कहान रश्मि', सोनगढ़-३६४२५०

जिला-भावनगर (सौराष्ट्र)

अनुक्रमणिका

१.	दृढ़ शील के धनी : सेठ सुदर्शन	९
२.	शालिसिक्य मच्छ के भावों का फल	१९
३.	श्री श्वेतवाहन मुनिराज की कथा	२०
४.	जब जागो तभी सबेरा	२२
५.	विलक्षण आहुति	२९
६.	जय गोम्मटेश्वर	६०
७.	उत्तराधिकारी की खोज	७२
८.	नीच से निर्ग्रन्थ	७५

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य २१००१/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य ११००१/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य ५००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत जैनधर्म की कहानियाँ भाग १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२,१३,१४,१५,१६,१७,१८ एवं अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह), चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़दोहा-भव्यामृत

शतक, आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार २६ पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग-१८ के रूप में पौराणिक कहानियों के अतिरिक्त अपने समय की सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती रूपवती जैन 'किरण' द्वारा लिखित दो नाटकों को प्रकाशित किया जा रहा है। इन नाटकों को पढ़कर पाठकों को एक अपूर्व आनन्द का अनुभव तो होगा ही, साथ ही उन्हें इनका मंचन करने का भाव भी आये बिना नहीं रहेगा। इसीप्रकार इसमें डॉ. महावीर शास्त्री द्वारा भी सहज बोधगम्य एवं सरल-सुबोध शैली में लिखी गई दो कहानियाँ शामिल की गई हैं।

इनका सम्पादन एवं वर्तनी की शुद्धिपूर्वक मुद्रण कर पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर ने इन्हें और भी सुन्दर एवं आकर्षक बना दिया है। अत: हम सभी के आभारी हैं। आशा है पाठकगण इनसे अपने जीवन में पवित्रता एवं सुदृढ़ता प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। – ऐसी हमारी भावी योजना है। इस सन्दर्भ में आपके बहुमूल्य सहयोग व सुझाव अपेक्षित हैं।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

प्रेमचन्द जैन
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़**" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

विनम्र आदराञ्जली

जन्म
1/12/1978
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
2/2/1993
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक 3 भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

हमारे मार्गदर्शक

श्री दुलीचंद बरडिया राजनाँदगाँव
पिता – स्व. फतेलालजी बरडिया

श्रीमती स्व. सन्तोषबाई बरडिया
पिता – स्व. सिरेमलजी सिरोहिया

सरल स्वभावी बरडिया दम्पत्ति अपने जीवन में वर्षों से सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सन् 1993 में आप लोगों ने 80 साधर्मियों को तीर्थयात्रा कराने का पुण्य अर्जित किया है। इस अवसर पर स्वामी वात्सल्य कराकर और जीवराज खमाकर शेष जीवन धर्मसाधना में बिताने का मन बनाया है।

विशेष **–** आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के दर्शन और सत्संग का लाभ लिया है।

परिवार

पुत्र	पुत्रवधु	पुत्री	दामाद
ललित	लीला	चन्द्रकला	गौतमचंद बोथरा,
स्व. निर्मल	प्रभा		भिलाई
अनिल	मंजु	शशिकला	अरुणकुमार पालावत,
सुशील	सुधा		जयपुर

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसी कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो व्स्की ह. शीतल विजेन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी-
मीरायाम प्रशांत भायाणी अमेरिका

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
स्व. धापू देवी ताराचन्द गंगवाल, जयपुर
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा

परमसंरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई मेहता, बम्बई एवं
श्री प्रकाशभाई मेहता, नेपाल
श्री रमेशभाई, नेपाल एवं श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
स्व. अमराबाई नांदगांव, ह. श्री घेवरचंद डाकलिया
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्री प्रेमचन्द रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
स्व. श्री जेठाभाई हंसराज, सिकंदराबाद
श्री शांतिनाथ सोनाज, अकलूज
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
श्री लवजी बीजपाल गाला, बम्बई
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
श्रीमती शांताबेन श्री शांतिभाई झवेरी, बम्बई
स्व. मूलीबेन समरथलाल जैन, सोनगढ़
श्रीमती सुशीलाबेन उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्री बिशम्भरदास महावीरप्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
सौ. सविताबेन रसिकभाई शाह, सोनगढ़
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी उज्जैन,
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री चिमनलाल ताराचंद कामदार, जैतपुर
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती ढेलाबाई चेरिटेबल ट्रस्ट, खैरागढ़

श्रीमती तेजबाई देवीलाल मेहता, उदयपुर
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
श्री फूलचंद चौधरी, बम्बई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री लक्ष्मीचंद सुन्दरबाई पहाड़िया, कोटा
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
सौ. चिंताबाई मिट्ठूलाल मोदी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, रायपुर
सौ. सुमन जयकुमार जैन, डोंगरगढ़
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
सौ. कंचनदेवी जुगराज कासलीवाल, कलकत्ता
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल सागर,
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध. प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
स्व. सुशीलाबेन हिम्मतलाल शाह, भावनगर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री सत्संग महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व. गैंदामल - ज्ञानचन्द - सुमतप्रसाद, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. निधि-निश्चल, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्री अभयकुमार शास्त्री, ह. समता-नम्रता, खैरागढ़
स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, बम्बई
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. गुलाबदेवी लक्ष्मीनारायण रारा, शिवसागर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
स्व. लालचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. ओमलता लालचन्द जैन, भुसावल
श्री योगेन्द्रकुमार लालचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री ज्ञानचन्द बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. साधना ज्ञानचन्द जैन लुहाड़िया, भुसावल
श्री देवेन्द्रकुमार ज्ञानचन्द लुहाड़िया, भुसावल
श्री महेन्द्रकुमार बाबूलाल लुहाड़िया, भुसावल
सौ. लीना महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री चिन्तनकुमार महेन्द्रकुमार जैन, भुसावल
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल जैन, खैरागढ़
अनुभूति-विभूति अतुल जैन, मलाड
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्री प्रशम जीतूभाई मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
श्री पारसमल महेन्द्रकुमार, तेजपुर

दृढ़ शील के धनी : सेठ सुदर्शन

अंगदेश में चम्पानगरी का राजा गजवाहन था। वह अत्यन्त सुन्दर तथा बहादुर था। उसने अपने समस्त शत्रुओं को हराकर अपना राज्य निष्कंटक बना लिया था। गजवाहन की राजधानी में एक वृषभदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी अर्हत्‌दासी नाम की स्त्री थी। वह शीलवती थी। सेठ को अपनी स्त्री के प्रति अत्यन्त प्रेम था। इसप्रकार दोनों का दाम्पत्य जीवन आनन्द से व्यतीत हो रहा था।

सेठ के यहाँ एक सुभग नामक ग्वाला था। एक दिन एक ऐसी घटना बनी, जिससे उस ग्वाले के जीवन में महान परिवर्तन आ गया। घटना यह थी कि ग्वाला जब जंगल से अपने घर आ रहा था, तब उसने मार्ग में एक शिला पर एक मुनिराज को ध्यानस्थ देखा। दिन अस्त होने का समय हो रहा था और सर्दी के दिन थे। ग्वाले ने विचार किया कि सर्दी के दिनों में शिला के ऊपर एक भी वस्त्र बिना मुनिराज रात्रि किसप्रकार व्यतीत करेंगे? दयाभाव से प्रेरित होकर वह अपने घर गया और अपनी स्त्री से मनिराज का सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाया।

तत्पश्चात् ग्वाला मुनिराज के समीप गया और उसने देखा कि मुनिराज का सम्पूर्ण शरीर सर्दी में ओस से भीग रहा है; परन्तु मुनिराज उसी शिला पर अन्तर्लीन होकर ध्यान में बैठे हैं। उस ग्वाले ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर ओस से भीगे हुए उनके शरीर को वस्त्र से साफ किया। इसप्रकार ग्वाले ने सम्पूर्ण रात्रि मुनिराज की सेवा में व्यतीत की। प्रभात होते ही मुनिराज ध्यान में से बाहर आये। मुनिराज ने ग्वाले को भक्तिभाव से सेवा में रत देखकर पवित्र पंच नमस्कार मंत्र दिया। जिसको प्राप्त करके मनुष्य स्वर्ग-मोक्ष के समस्त सुखों को प्राप्त करता है। मुनिराज भी मंत्रोच्चार करते हुए आकाशमार्ग से विहार कर गये।

यहाँ ग्वाला सोते-जागते, उठते-बैठते निरन्तर णमोकार मंत्र का जाप करने लगा। वह किसी भी कार्य का प्रारम्भ करने से पूर्व इस पवित्र मंत्र की

आराधना करता। इसप्रकार वह मंत्र उसके रोम-रोम में समा गया। एक दिन सेठ वृषभदत्त ने ग्वाले को मंत्र बोलते हुए सुन लिया। मंत्र प्राप्ति के विषय में सेठजी ग्वाले से पूछने लगे। ग्वाले ने मुनिराज के पास से मंत्र प्राप्ति का सम्पूर्ण वृतांत उन्हें कह सुनाया। सेठ वृषभदत्त ने प्रसन्न होकर कहा कि तेरा जीवन धन्य है ! तेरा अहो भाग्य है कि जिनकी पूजा त्रिभुवन में होती है, तुझे ऐसे मुनिराज के दर्शन हुए।

उस ग्वाले के जीवन में एक दिन फिर एक घटना बनी। उस ग्वाले की गायें नदी पार करने लगीं, ग्वाला भी पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करके नदी में कूद पड़ा। वर्षा के कारण नदी भरपूर जल से भरी थी। दुर्भाग्य कहो या संयोग, उसके नदी में कूदते ही एक नुकीली लकड़ी ग्वाले के पेट में घुस गई, जिससे उसका पेट फट गया और उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि वह पवित्र मंत्र के प्रभाव से स्वर्ग में जाता; परन्तु निदानबंध के कारण सेठ वृषभदत्त के यहाँ पुत्र हुआ, जिसके होने पर सेठ वृषभदत्त की बहुत उन्नति हुई; उसकी प्रतिष्ठा, धन, वैभव तथा सम्पत्ति में बहुत वृद्धि हुई। उसका नाम सुदर्शन रखा गया।

उसी नगरी में सागरदत्त नाम का एक अन्य सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सागरसेना था। उसकी मनोरमा नाम की एक सुन्दर पुत्री थी। सुदर्शन के युवा होने पर मनोरमा के साथ सुदर्शन का विवाह हुआ। अब सुदर्शन ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। वह युगल जोड़ी आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगी।

एक दिन सेठ वृषभदत्त को समाधिगुप्त नामक मुनिराज के दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ, वे मुनिराज के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि समस्त धन, वैभव, परिग्रह को छोड़कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर मुनि हो गये। अब सुदर्शन पर घर-गृहस्थी और परिवार का सम्पूर्ण भार आ पड़ा। सुदर्शन की प्रसिद्धि होने लगी। राज-दरबार, सर्व साधारण सभी उन्हें सेठ सुदर्शन के रूप में जानने लगे। उनकी ईमानदारी व सज्जनता की चर्चा गली-गली में होने लगी। सुदर्शन भी कुशलतापूर्वक सांसारिक कार्यों का निर्वाह करते हुए

श्री जिनेन्द्र भगवान की भक्ति-आराधना व जैन शास्त्रों के स्वाध्याय-चिन्तन-मनन व ध्यान में अपना समय बिताने लगे। अत: उनकी गिनती एक धार्मिक पुरुष के रूप में भी होने लगी। सभी उनके सदाचार श्रावकव्रत-विधान की तथा दान, पूजादि कार्यों की प्रशंसा करने लगे। वे अहिंसाणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, स्वदार-सन्तोषव्रत आदि व्रतों को धारण करके सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इससे राज दरबार में भी उनकी बहुत प्रशंसा होने लगी। मगधापति भी उन्हें बहुत सम्मान देते थे।

सुदर्शन का कपिल नाम का एक ब्राह्मण मित्र था और वह राजा गजवाहन का राज पुरोहित था। उसकी पत्नी का नाम कपिला था। वह सुदर्शन के रूप पर मोहित थी। एक दिन कपिला ने कपिल के घर से बाहर जाने के समय षड़यंत्र रचकर अपनी दासी को सुदर्शन के पास भेजा और कहलवाया कि तुम्हारे अभिन्न मित्र कपिल ने विशेष रूप से घर मिलने के लिये बुलाया है।

दासी के कहे अनुसार सुदर्शन कपिल के घर पहुँचा, तब कपिला ने कहा कि वह बाहर गया है, परन्तु मेरी बात सुनो ! मैं तुम्हारे रूप-गुण पर मोहित हूँ, इसलिये मेरा मनोरथ पूर्ण करो ! यदि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करोगे तो मैं तुम्हें अभी इसी समय मरवा दूँगी। ऐसा कहकर वह मूर्खा सुदशन से आलिंगनादि करने लगी। ऐसा करते देख सेठ सुदर्शन उससे कहने लगे कि क्या तुम्हें पता नहीं है कि मैं नपुंसक हूँ ? यह सुनकर कपिला उससे विरक्त हुई और उसे अपने घर से जाने दिया।

एक दिन महाराज सेठ सुदर्शन के साथ बगीचे में घूम रहे थे। महाराज गजवाहन की रानी भी साथ थी। बाद में रानी ने सेठ सुदर्शन की पूछ-परख की। तब दासी ने बताया कि महारानीजी वह हमारी नगरी के प्रधान सेठ हैं, उनका नाम सुदर्शन है। रानी ने कहा कि यह तो बहुत आनन्द की बात है कि सुदर्शन राज्यरत्न है, परन्तु उसका सौन्दर्य अपूर्व है। मैंने आज तक ऐसा सुन्दर पुरुष नहीं देखा है। उसको देखते ही मेरा मन आकर्षित हो गया है। मुझे भ्रम है कि स्वर्ग का देव भी इतना सुन्दर होगा क्या ? अच्छा, तू

ही कह कि सेठ कैसा लगता है ? क्या तूने उसके जैसा दूसरा पुरुष देखा है ? दासी ने कहा कि महारानीजी ! तुम्हारा अनुमान सत्य है। पृथ्वी पर तो क्या सम्पूर्ण त्रिभुवन में भी उसके समान सुन्दर युवक मिलने वाला नहीं है। वह सचमुच ही सुन्दर पुरुषों का सिरताज है।

रानी ने दासी को अपने अनुकूल जानकर कहा कि तू मेरा एक काम कर सकेगी ? सत्य मान, मैं तुझे अपनी अन्तरंग दासी मानकर कहती हूँ, यह बात किसी के सामने प्रकट न हो जाये। दासी ने कहा कि मैं तो तुम्हारी दासी हूँ, क्या आज्ञा है कहो ? मैं कार्य पूरा करने के लिये तैयार हूँ। रानी ने कहा कि तू कार्य कर सकेगी। दासी ने सोचकर कहा कि महारानीजी ! आप मुझ पर विश्वास रखो। मेरे से जहाँ तक बनेगा मैं आज्ञा का पालन करूँगी। तब रानी अपनी भावी आशा पर फूली नहीं समाई और वह भविष्य की अविचारितरम्य कल्पनाएँ करने लगी। तत्पश्चात् रानी व्यग्रता प्रकट करने लगी कि मैं उस नवयुवक पर तन-मन से मोहित हूँ। जब से मैंने उसे देखा है तभी से वह मेरी नजरों में समा गया है। मेरा हृदय उस पर न्योछावर हो रहा है। बस, तू ऐसा प्रयत्न कर कि वह सुन्दर सेठ मेरे पास आवे, अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ है। ध्यान रहे, यह गुप्त बात तेरे सिवाय अन्य कोई नहीं जान पाये अन्यथा... कहकर रानी चुप हो गई।

दासी फूलकर फुग्गा हो गई। उसने विचार किया कि मेरा भाग्य भी चमक जायेगा। मैं मालामाल हो जाऊँगी। काम से पीड़ित रानी मेरे चंगुल में फंस गई है। ऐसा विचारकर वह रानी से कहने लगी कि तुम इतनी छोटी-सी बात से परेशान क्यों होती हो ? बात ही बात में मैं तुम्हारे दिल के अरमान पूरे कर दूँगी। संसार में ऐसी कौनसी वस्तु है, जो तुमको नहीं मिल सकती? तुम विश्वास रखो, दुखी मत होओ, तुम्हारे मन की मुराद अवश्य पूर्ण होगी और शीघ्र ही होगी।

इधर सेठ सुदर्शन ने श्रावक के व्रत धारण किये थे। वे संसार में रहते हुए भी उससे मुक्त होना चाहते थे, अतः वह कभी ध्यान में बैठ जाते तो कभी स्वाध्याय में मग्न रहते। अष्टमी तथा चर्तुदशी को तो वे रात्रि के अंतिम

प्रहर में श्मशान में जाकर मुनियों की भाँति ध्यानमग्न हो जाते। इधर रानी की दासी तो सुदर्शन से एकान्त में मिलने का मौका ढूंढ़ ही रही थी, वह मौका उसे मिल गया। सबसे पहले उसने राजमहल के पहरेदारों पर रोब जताने के लिये एक षड़यंत्र रचा। उसने कुम्हार के पास से मनुष्य के आकार की एक विशाल मूर्ति बनवाई। और एक दिन वह अपनी योजनानुसार उस मूर्ति को राजमहल ले गई। पहरेदारों के टोकने पर दासी ने गुस्से में आकर मूर्ति को जमीन पर पटक दी, जिससे वह मिट्टी की मूर्ति टूट गई। अब दासी क्रोधपूर्ण कठोर शब्दों में कहने लगी कि दुष्टो ! तुमको पता नहीं है कि महारानीजी ने नर व्रत धारण किया है, जिसमें नर के समान मिट्टी के पुतले की आवश्यकता होती है, मैं उसे ले जाती थी, परन्तु तुमने उसे तोड़ दिया। अब महारानीजी का व्रत किसप्रकार पूरा होगा ? अब आज रानी भोजन भी नहीं कर सकेगी। मैं अभी जाकर तुम्हारी शिकायत करती हूँ और तुम्हें दण्डित कराके तुम्हारी इस नदानी का फल चखाती हूँ।

पहरेदार भयभीत हो गये। वह दासी से क्षमायाचना करने लगे कि तुम महारानी से कहकर दण्ड मत दिलवाओ। दासी ने कहा कि अच्छा, इस समय तो मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ। यद्यपि तुमने अपराध तो बहुत बड़ा किया है; *परन्तु तुम्हारी हालत देखकर मुझे दया आती है।* **अब** फिर से ऐसी भूल मत करना। मुझे किसी वस्तु अथवा महारानीजी के नरव्रत की पूर्ति के लिये किसी मनुष्य की भी जरूरत पड़े तो मैं लाऊँगी और यदि तुम लोगों ने विघ्न डाला तो तुम्हारा क्या होगा, यह बताने की जरूरत नहीं।

पहरेदारों ने कहा कि इस समय क्षमा करो, दूसरी बार तुम्हारे कार्य में विघ्न नहीं करेंगे। तुम आने-जाने के लिये स्वतंत्र हो। दासी ने क्रोध करके कहा कि इस समय तो क्षमा करती हूँ, आगे से ध्यान रखना, भूल करके हमारे कार्य में विघ्न मत डालना। मैं रानी का व्रत पूर्ण करने के लिये मिट्टी का पुतला लेने जाती हूँ अथवा जैसी आवश्यकता होगी वैसा करूँगी – ऐसा कहकर दासी श्मशान में पहुँच गई। वहाँ जाकर उसने देखा कि तपस्वी सुदर्शन ध्यान में लीन हैं। श्मशान भूमि की निष्तब्धता और भयंकरता में एक स्थान

पर तपस्वी सुदर्शन कार्यात्सर्ग में लीन थे। बस, दासी को अच्छा सुयोग मिल गया, वह फूली नहीं समाई। उसने उसी समय तपस्वी सुदर्शन को उठाकर रानी के महल में पहुँचा दिया।

जब रानी ने सुदर्शन को अपने कक्ष में देखा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हई। उसने मन में विचारा कि मेरी मनोकामना पूर्ण हुई, उसने कामवासना से पीड़ित होकर सेठ सुदर्शन से कहा कि हे प्रिय ! मेरी मनोकमना पूर्ण करो ! अपने प्रेमालिंगन से मुझे सुखी करो। देखो, तुम्हारे लिये मुझे कितनी तकलीफ झेलनी पड़ी है, अब आनन्द से सुख क्रीड़ा करके जीवन सार्थक बनाओ। परन्तु सेठ सुदर्शन तो टस से मस भी न हुए।

"अहो ! देखो तो कामी जीव की दशा, वह अपने पद-प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा सबकुछ भूलकर दूसरे की इच्छा के बिना भी कुशील सेवन करने को तैयार हो जाता है। **अरे, धिक्कार है ऐसे कामभाव को, जो मनुष्य पर्याय में भी पशुता जैसा जीवन कर देता है।**

हे आत्मन् ! तू ऐसे भावों से सदा बच कर रहना, अन्यथा ऐसे भावों का फल इस जन्म में तो कलंक रूप होता ही है, आगामी जन्मों में भी नरकादि के असहनीय दुःख भोगने पड़ते हैं।"

संसार में ऐसे जितेन्द्रिय तपस्वी आदर्श सदाचारी कहाँ मिलेंगे ? रानी की अनेक प्रकार की कुचेष्टाओं से भी ब्रह्मचारी सुदर्शन का मन विचलित नहीं हुआ। इस कष्ट को दूर करने के लिए सेठ जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करके प्रार्थना करने लगे। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि यदि मेरे ये कलंक दूर हो तो संसार का परित्याग करके दीक्षा ले लूँगा, अब इस संसार के झमेले में नहीं पड़ूँगा।

"धन्य हैं वे, जो संसार में भी ऐसे आपतित संकट को दूर से ही त्याग देते हैं तथा धैर्यपूर्वक अपने शीलधर्म का पालन मौत की कीमत पर भी करते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि मौत तो एक भव की क्षति करेगी, किन्तु कुशील भव-भव की क्षति करने वाला है। और फिर मौत भी अपने आयु कर्म के क्षय से आती है, अपयश भी अपने अयशस्कीर्ति कर्म के उदयानुसार

आता ही है। अत: अपयश व मौत आदि के भय से कभी भी शीलादि धर्म में दोष उत्पन्न नहीं करना चाहिए।''

– इसप्रकार विचार करते हुए सेठ सुदर्शन अपने शीलधर्म से किंचित् भी विचलित नहीं हुए और न ही अपनी जान की कीमत पर भी कोई बात अपने बचाव में कही। – इसप्रकार सेठ सुदर्शन दृढ़निश्चय करके ध्यानमग्न हो गये।

धन्य हैं सुदर्शन सेठ ! आपकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है। भला आज ऐसा कौन संसारी होगा जो सुन्दरियों द्वारा अनेक प्रकार की विनती करने पर भी उनके प्रस्ताव को ठुकरा दे ? वह भी अपने अपयश और मरण की कीमत पर। **अहो ! संसार से उदासीन होकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करके सुन्दरियों के बाहुपाश से बचकर अपने सदाचार की रक्षा करना तपस्वी सुदर्शन का ही कार्य है।**

रानी अपने लाख प्रयत्न करके थक गई, परन्तु सेठ सुदर्शन का व्रत भंग नहीं हुआ। रानी अपनी वासना पूर्ण नहीं होने से दुखी होकर अपनी गलती का पता राजा को न चल जाय – इस भय से सेठ सुदर्शन को फंसाने के लिये षड़यंत्र रचने लगी। वह अपने शरीर पर नख द्वारा जख्म करके चिल्लाने लगी – " अरे ! दौड़ो, बचाओ, पापी से मुझे बचाओ।" बस, उसका यह दूसरा षड़यंत्र कुछ समय के लिए सफल हो गया। तपस्वी सुदर्शन को महल में ही पकड़ लिया गया और पकड़कर महाराज के सामने पहुँचा दिया गया। देखा स्त्रीचरित्र ! थोड़े समय पूर्व क्या बात थी और अब क्या हो गया ? दुराचारी रानी ने सफल न होने से निर्दोष ब्रह्मचारी सुदर्शन को अपराधी बना दिया। महाराज ने सुदर्शन के बारे में सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर उसे फाँसी की सजा सुना दी।

यहाँ महाराज का हुक्म हुआ –" दुष्ट पापी को मार दो।" जल्लाद तपस्वी सुदर्शन को मारने के लिये श्मशान भूमि में ले गये। ज्यों ही उसे मारने के लिये जल्लादों की तलवार उठी, परन्तु सुदर्शन की गर्दन पर बार खाली गया। तलवार सुदर्शन की गर्दन पर फूल की तरह पड़ी। सब आश्चर्यचकित

हो गये। उसी समय आकाश में से देवों ने तपस्वी सुदर्शन की जय-जयकार करते हुए पुष्पवृष्टि की और इसप्रकार स्तुति की–

“हे शीलव्रती सुदर्शन आप धन्य हैं ! आज संसार में तुम्हारे समान कोई भी ऐसे शीलव्रत का धारी नहीं है, तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत अतुलनीय है, तुम्हारा हृदय सुमेरु के समान अचल है, तुमने अखण्ड ब्रह्मचर्य से अलौकिक कार्य किया है, जिसकी उपमा तीनभुवन के इतिहास में नहीं मिलती।”

– इसप्रकार देवों ने पुष्पवृष्टि की और श्रद्धा-भक्ति से उनकी पूजा की। इधर सेवकों ने तपस्वी सुदर्शन के प्रभाव का वर्णन जाकर महाराज को सुनाया। तब महाराज ने भी विलम्ब न करते हुए शीघ्र ही सेठ सुदर्शन के समाने पहुँचकर अपने अपराध की क्षमा याचना की।

इस घटना के पहले से ही विरक्त सेठ सुदर्शन के हृदय में संसार से अत्यन्त विरक्तभाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने तुरन्त अपने पुत्र सुकान्तवाहन को घर का भार सौंपकर, संसार पूजित विमलवाहन महामुनि के समीप जाकर जिनदीक्षा अंगीकार कर ली।

राजा के भय से रानी ने अपघात कर लिया और दासी भागकर पटना पहुँच गई। वह पटना की समस्त गणिकाओं और नगर की स्त्रियों को अपने स्वदेश त्याग की तथा रानी और सुदर्शन की कथा कहती हुई देवदत्ता वैश्या के यहाँ रहने लगी। पटना की जनता को भी दासी की बात सुनकर मन में बहुत आश्चर्य हुआ और वह ऐसे दृढ़शील के धारी सेठ सुदर्शन, जो मुनि हो गये हैं, उनके दर्शन करने की भावना करती हुई उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

एक समय की बात है कि अत्यन्त धीर गंभीर शीलवान सुदर्शन मुनि विहार करते-करते पटना आ पहुँचे। सुदर्शन मुनि का शरीर अनेक उपवासों के कारण अत्यन्त शिथिल हो गया। एक दिन दासी ने मुनि को पारणा के लिये राजमार्ग से आते देखा, वह देवदत्ता वैश्या से कहने लगी हे सुन्दरी!

जिस मानव आत्मा के कारण मैं नष्ट हुई, उस साधु को तो देख !

दासी की बात सुनकर देवदत्ता कहने लगी कि पण्डिता, महादेवी और कपिला में से कोई भी कामशास्त्र की विशेषज्ञ नहीं थी, न कामकला विशारद थी और न मनुष्य के मन की पारखी थी; तू देख, मैं अभी तुरन्त ही इस मुनि के चित्त को मोहित करती हूँ।

इसप्रकार दासी से कहकर देवदत्ता ने मुनिराज का पड़गाहन किया और उन्हें अपने घन ले गई, जब मुनिराज ने देवदत्ता के घर में प्रवेश किया, तभी उसने तुरन्त ही दरवाजा बन्द कर दिया और तीन दिन तक मुनिराज पर भंयकर उपसर्ग किया; परन्तु इस समय मुनिराज ने अपने मन को इतना आत्मसन्मुख कर लिया कि जिससे वे लकड़ी अथवा पत्थर के समान निश्चल हो गये। उस समय देवदत्ता ने अपने सैकड़ों हाव-भाव, चेष्टा से विकार बताया, परन्तु सुदर्शन मुनि का चित्त जरा भी मोहित नहीं हुआ। जब देवदत्ता ने देखा कि मुनिराज इतने हाव-भाव दिखाने पर भी इतने स्थिरचित्त, गम्भीर और दृढ़ रहे हैं– यह जानकर उसको बहुत भय हुआ तो वह अपने दूषित अभिप्राय की निन्दा करने लगी और रात्रि होते ही मुनिराज को श्मशान में छोड़ आई और अपना काला मुँह लेकर वापस घर आ गई।

सुदर्शन मुनि जैसे ही भयंकर श्मशान भूमि में पहुँचे, उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया, रात्रि में कायोत्सर्ग करके स्थिर हो गये। वहाँ रानी का जीव जो मरकर व्यंतरी हुआ था, उसने सुदर्शन मुनि को पहिचान लिया और लगातार सात दिन तक उनके ऊपर भयंकर उपसर्ग किया। सात दिन पश्चात् मुनिराज ने क्षपकश्रेणी आरोहणकर घातिकर्मों का क्षय किया और समस्त पदार्थों को साक्षात् करनेवाला केवलज्ञान प्रगट किया।

केवलज्ञान प्रगट होते ही देवों का समूह स्तुति-वंदना करने के लिये आने लगा। तब वैश्या देवदत्ता, दासी, व्यंतरी और समस्त नगरवासी जनता अत्यन्त भक्ति से केवली के पास आये और केवली भगवान सुदर्शन का धर्मोपदेश होने लगा – कि ''जो मानव शरीर पाकर धर्म नहीं करता, वह निधि पाकर भी अन्धा है। जगत् में जीव अपने सुखस्वभावी आत्मा को न

जानकर परद्रव्य के ग्रहण करने के भाव से स्वयं ही सुख-दुःख की कल्पना करता रहता है। वास्तव में तो अपना आत्मा सुख से ही बना हुआ है, उसमें सुख कहीं बाहर से नहीं लाना है, बल्कि उस सुख को स्वीकार करना ही एक मात्र जीव का कर्त्तव्य है।''

पूर्वकथित व्यन्तरी, देवदत्ता वैश्या, दासी और उपस्थित जनता केवली भगवान सुदर्शन का धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। कितने ही जीवों ने भक्ति से श्रावक के व्रत धारण किये, कितने ही जीवों ने सम्यक्त्व धारण किया और कितने ही जीवों ने संसार से विरागी होकर समस्त परिग्रह छोड़कर मुनिदीक्षा अंगीकार की।

केवली भगवान सुदर्शनस्वामी ने देशान्तर में विहार करके धर्मोपदेश दिया और अन्त में समस्त कर्मों का नाश करके गुलजार बाग पटना से मोक्ष पधारे।

– इसप्रकार सुदर्शन मुनिराज, जो पूर्वभव में सुभग ग्वाला थे, वे पंच नमस्कार मंत्र को स्मरण करते हुए मरण कर सेठ सुदर्शन हुए और इस भव में अपने प्रबल पुरुषार्थ से कर्मों का नाशकर अनन्त-अव्याबाध-सुखस्वरूप शास्वत सिद्धपद को प्राप्त हुए। उन्हें हमारा भक्ति-भाव पूर्वक बारम्बार नमस्कार हो।

– बोधि समाधि निधान से साभार

जैसे मुट्ठी द्वारा आकाश पर प्रहार करना निरर्थक है। जैसे चावलों के लिए छिलकों को कूटना निरर्थक है। जैसे तेल के लिए रेत को पेलना निरर्थक है। जैसे घी के लिए जल को बिलौना निरर्थक है। केवल महान खेद का कारण है। उसीप्रकार असाता वेदनीय आदि अशुभ कर्म का उदय आने पर विलाप करना, रोना, क्लेशित होना, दीन वचन बोलना निरर्थक है – दुःख मिटाने में समर्थ नहीं है। परन्तु वर्तमान में दुःख ही बढ़ाते हैं। और भविष्य में तिर्यञ्चगति तथा नरक-निगोद के कारणभूत तीव्रकर्म बाँधते हैं। जो अनंतकाल में भी नहीं छूटते।

– श्री भगवती आराधना, आचार्य शिवकोटि

शालिसिक्य मच्छ के भावों का फल

(स्वयंभू श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार करके यह कथा लिखते हैं – जिसे पढ़कर आपको ज्ञात होगा कि यह जीव पापक्रिया किये बिना भी कितना घोरपाप का बंध कर लेता है; क्योंकि वास्तव में परद्रव्य का तो कोई कुछ कर ही नहीं सकता। अत: क्रिया फलदायी नहीं होती, फल तो परिणामों का तथा अभिप्राय में निरन्तर वस रही वासना का लगता है।)

अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र में एक विशाल महामच्छ होता है, जिसकी लम्बाई एक हजार योजन, चौड़ाई पाँच सौ योजन और ऊँचाई ढ़ाई सौ योजन की होती है।

उस महामच्छ के कान में एक शालिसिक्य मच्छ रहता है, जो महामच्छ के कान का मैल खाता है। जब महामच्छ सैकड़ों जल जन्तुओं को खाकर गहरी नींद में सो रहा होता है, तब दूसरे जीव-जन्तु उसके खुले मुँह में आया-जाया करते हैं। उस समय शालिसिक्य मच्छ (चावल जैसा मच्छ) विचार करता है कि यह महामच्छ कैसा मूर्ख है कि जो अपने मुँह में आते जल-जन्तुओं को व्यर्थ छोड़ देता है। यदि मुझे ऐसा मौका मिलता, तो मैं एक भी जीव को नहीं छोड़ता, सबको खा जाता।

पापी जीव ऐसी खोटी भावना से दुर्गति में दु:ख भोगता है। शालिसिक्य मच्छ की भी ऐसी ही गति हुई। वह मरकर सातवें नरक गया, कारण कि मन के भाव ही पुण्य और पाप का कारण होते हैं। इस कारण सज्जन जैन शास्त्रों का अभ्यास करके अपने को पवित्र बनावें और कभी भी खोटी भावना को हृदय में स्थान नहीं दें। शास्त्रों के बिना अच्छे-बुरे भावों का ज्ञान नहीं होता, इसलिये शास्त्र-अभ्यास को पवित्रता का मूल कारण कहा है।

हे भव्य ! जिनवाणी मिथ्या-अंधकार को नष्ट करने के लिये प्रकाश का काम करती है; अत: प्रतिदिन जिनवाणी के अध्ययन मनन-अवगाहन में अपने उपयोग का उपयोग करना। **– आराधना कथाकोष भाग-३ से साभार**

अन्तर्मुहूर्त पहले नरक के परिणाम और अन्तर्मुहूर्त पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले

१००८ श्री श्वेतवाहन मुनिराज की कथा

चम्पा नाम की नगरी में श्वेतवाहन राजा राज्य करते थे। एकबार भगवान महावीर का उपदेश सुनकर उनका हृदय वैराग्य से भर गया। इस कारण उनने पुत्र विमलवाहन को राज्य का भार सौंपकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ ही अन्य अनेक राजाओं ने भी संयम धारण कर लिया। सदा दश धर्मों से प्रेम होने के कारण वे धर्मरुचि नाम से प्रसिद्ध हुए। बहुत समय तक मुनियों के साथ रहकर अखण्ड संयम को साधते-साधते जब वे मुनिराज एक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। तब उसी समय वहाँ से राजा श्रेणिक भगवान के दर्शन करने जा रहे थे, रास्ते में एक वृक्ष के नीचे श्वेतवाहन मुनि को ध्यानस्थ देखकर राजा श्रेणिक ने उन्हें नमस्कार किया। नमस्कार करते हुए उन्हें उनकी मुखमुद्रा विकृत दिखाई दी।

इस कारण राजा श्रेणिक ने गणधर भगवान से उसका कारण पूछा, तब गणधर प्रभु कहते हैं कि हे श्रेणिक, सुन ! आज ये मुनि एक माह के उपवास के बाद भिक्षा के लिये नगर में गये थे। वहाँ तीन मनुष्य मिलकर इनके पास आये। उनमें एक मनुष्य, मनुष्यों के लक्षण को जानने वाला था, उसने इन मुनिराज को देखकर कहा कि किसी कारण ये तो साम्राज्य का त्याग करके मुनि हो गए हैं और राज्य का भार अपने छोटे से बालक पर डाल आये हैं। यह सुनकर तीसरा मनुष्य बोला कि इस कारण इसका तप तो पापयुक्त ही हुआ। इससे क्या लाभ है ? यह बड़ा दुष्ट है। इसी कारण दया छोड़कर लोक व्यवहार से अनभिज्ञ असमर्थ बालक को राज्यभार सौंपकर केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के अर्थ यहाँ तप करने के लिये आया है। उधर निष्कृष्ट परिणामी मंत्री आदि ने बालक को साँकल से बाँध दिया और राज्य को बाँट कर इच्छानुसार स्वयं उसका उपभोग कर रहे हैं।

इसप्रकार तीसरे मनुष्य के वचन सुनकर मुनि स्नेह और मान से आहार

किये बिना ही नगर से वापस वन में आकर यहाँ वृक्ष के नीचे जा बैठे। बाह्य कारण मिलने से उनके हृदय में तीव्र क्रोध कषाय उत्पन्न हुई, संक्लेश परिणामों से अशुभ लैश्या वृद्धिंगत हुई। जो मंत्री आदि प्रतिकूल हुए हैं उनका हिंसा आदि किसी भी प्रकार से निग्रह करने का चिन्तन करने से इस समय वे संरक्षा नामक रौद्रध्यान में दाखिल हुए हैं।

यह सुनकर राजा श्रेणिक ने पुन: पूछा कि प्रभो ! इन परिणामों का फल क्या होगा ? तब गणधर देव बोले– यदि अब आगे अन्तर्मुहूर्त तक उनकी यही स्थिति रही, तो वे नरकायु का बन्धन करने योग्य हो जायेंगे। अत: हे श्रेणिक ! तुम शीघ्र जाओ और उन्हें स्थितिकरण कराओ, उन्हें सम्बोधित करो कि " हे साधु ! शीघ्र ही यह अशुभध्यान छोड़ो, क्रोधरूप अग्नि को शांत करो, मोह के जाल को दूर करो, तुमने जो यह मोक्ष के कारणरूप संयम धारण करके भी इस समय इसे छोड़ रखा है, अत: सावधान होकर फिर से उसे अंगीकार करो। यह स्त्री, पुत्र, भाई आदि का सम्बन्ध अमनोज्ञ है और संसार को बढ़ाने वाला है – इत्यादि युक्तिपूर्ण बातों से तुम मुनिराज का स्थितिकरण करो। जिससे वे फिर स्वरूप में स्थिर होकर शुक्लध्यानरूप अग्नि से घातिया कर्मरूपी सघन वन को भस्म कर देंगे और केवलज्ञान आदि लब्धियों से दैदीप्यमान शुद्धस्वभाव के धारक हो जायेंगे।

गणधर महाराज के ऐसे वचन सुनकर राजा श्रेणिक शीघ्र ही उन मुनिराज के पास गये और गणधर महाराज द्वारा बताये मार्ग से उन्हें सम्बोधित किया, इससे उन मुनिराज ने तुरन्त क्षपकश्रेणी आरोहण कर शुक्लध्यान से केवलज्ञान प्राप्त किया। देखो ! परिणामों की कैसी विचित्र योग्यता है कि घड़ी भर पहले नरक के परिणाम हो रहे थे और घड़ी भर पश्चात् केवलज्ञान की प्राप्ति !

अहो ! कार्य तो अपनी योग्यता से हुआ ही है, फिर भी यहाँ यह कथन हमें स्थितिकरण का बोध देता है। हम भी अनादिकाल से अपने स्वरूप से च्युत होकर भटक रहे हैं, अत: स्वरूप स्थिरतारूप स्वयं का स्थितिकरण करना, वही वास्तविक स्थितिकरण है – यह निमित्तप्रधान शैली से किया गया कथन है।

– बोधि समाधि निधान से साभार

जब जागो तभी सबेरा

(नलिनकेतु आदि मोहांध जीवों की कथा)

पूर्व विदेह क्षेत्र में मंगलावती नाम का मनोहर देश है। वह मंगलावती देश श्री जिनेन्द्र देव तथा मुनियों की वंदना, यात्रा, पूजा-प्रतिष्ठा आदि के सैंकड़ों उत्सवों से धर्मध्यान का कारण है। इसलिए उसका 'मंगलावती' नाम सार्थक है। बहुत पुरानी बात है, मंगलावती में राजा क्षेमंकर राज्य करते थे। उनके वज्रायुद्ध नाम का (भविष्य में होने वाले तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ का जीव) चक्रवर्ती पुत्र था। वे इसी भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर उसपद को विभूषित करने वाले महापुरुष थे।

जब राजा वज्रायुद्ध सभा में सिंहासन पर विराजमान होते और उनके ऊपर चँवर ढुलते, तब वे राजा इन्द्र समान लगते। चक्रवर्ती अपने तथा दूसरों के कल्याण के लिये तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिये सिंहासन पर विराजमान होकर अपने भाई-बन्धु, मित्र राजाओं तथा सेवकों को धर्मोपदेश देते थे।

एक दिन एक विद्याधर डर से घबड़ाया दौड़ता हुआ आया और उसने अपनी रक्षा करने के लिये चक्रवर्ती की शरण माँगी। उसके पीछे-पीछे सभा भवन को कंपाती हुई एक विद्याधरी आई, वह क्रोधरूपी अग्नि से जल रही थी तथा हाथ में खुली तलवार लेकर विद्याधर को मारना चाहती थी। उस विद्याधरी के पीछे एक वृद्ध विद्याधर आया। उसके हाथ में गदा थी। वह इन दोनों के बैर से परिचित था। वृद्ध विद्याधर राजा वज्रायुध को नमस्कार करके कहने लगा कि हे स्वामिन् ! आप दुष्टों को दण्ड देने में और सज्जनों को पालने में चतुर हो। दुष्टों को उचित दण्ड देना और सज्जनों का पालन करना क्षत्रियों का धर्म है और आप हमेशा इस धर्म का पालन करते हो। अतः आप जैसे धर्मात्मा को अवश्य ही दुष्ट विद्याधर को दण्ड देना चाहिये, क्योंकि वह अन्यायी है, पापी है। हे देव ! यदि तुम इसका कारण जानना चाहते हो तो मैं जो कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनो।

यह जम्बूद्वीप धर्म का स्थान है तथा देव, विद्याधर और मनुष्यों से भरा

है। इसमें एक कच्छ नाम का मनोहर देश है और उसमें एक विजयार्द्ध पर्वत है। उसकी उत्तर श्रेणी के शुकप्रभ नगर में अपने पूर्व संचित धर्म के प्रभाव से इन्द्रदत्त नाम का विद्याधर राज्य करता था। उसकी शुभ लक्षणों वाली यशोधरा नाम की रानी थी। उसका मैं वायुवेग नाम का पुत्र हूँ तथा समस्त विद्याधर मेरी आज्ञा मानते हैं।

उसी श्रेणी के किन्नरगीत नाम के नगर में चित्रचूल का नाम विद्याधर राज्य करता था, उसकी सुकान्ता नाम की पुत्री थी। सुकान्ता का विवाह विधिपूर्वक मुझसे हुआ, उसके गर्भ से यह शान्तिमति नाम की शीलवती पुत्री उत्पन्न हुई है। यह भोग तथा धर्म की सिद्धि के लिये पूजा की सामग्री लेकर मुनिसागर पर्वत पर विद्या सिद्ध करने गई थी। जब विद्या साध रही थी, उस समय यह दुष्ट कामातुर पापी उस विद्या सिद्धि में विघ्न डालने आया, परन्तु पुण्यकर्मोदय से सब कार्य सिद्ध करने वाली तथा सुख प्रदायिनी सारभूत वह विद्या मेरी इस पुत्री को उसी समय प्राप्त हो गई। यह पापी विद्या के भय से तुम्हारी शरण में आया है तथा मेरी पुत्री भी क्रोधवश इसे मारने के लिये पीछे-पीछे आई है। जब मैं विद्या की पूजा सामग्री लेकर वहाँ पहुँचा तब वहाँ अपनी पुत्री को न देखकर इसी मार्ग से मैं भी पीछे-पीछे यहाँ आया हूँ। हे नाथ ! इसप्रकार अपनी वास्तविकता आप से कही है। अब आप इस दुष्ट के लिये जो कुछ उचित समझें, करें।

उसकी यह बात सुनकर वह अवधिज्ञानी चक्रवर्ती महाराज कहने लगे कि विद्या सिद्ध करने में विघ्न डाला था वह मैं जानता हूँ, परन्तु इससे पूर्व में क्या हुआ, वह सुनो। इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में गंधार देश के विन्ध्यपुरी नगर में विन्ध्यसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसके सुलक्षणों वाली सुलक्षणा नाम की रानी थी। इन दोनों के नलिनकेतु नाम का पुत्र था। उसी नगर में धनदत्त नाम धनी वैश्य रहता था। उसकी स्त्री का नाम श्रीदत्ता था। उन दोनों के सुदत्त नाम का पुत्र था तथा प्रीतिकरा नाम की उसकी स्त्री थी। वह स्त्री रूप, लावण्य तथा गुणों की निधान थी।

एक दिन प्रीतिकरा वनभ्रमण के लिये गई। वहाँ राजपुत्र नलिनकेतु की

दृष्टि उसके ऊपर पड़ गई तथा पापकर्म के उदय से वह उस पर कामासक्त हो गया। वह न तो उसके बिना रह सका और न कामाग्नि को सहन कर सका। इस कारण वह मूर्ख न्यागमार्ग का उल्लंघन करके बलजोरी से उसका हरण कर ले गया। स्त्री के वियोग से सेठ पुत्र सुदत्त का हृदय भी व्याकुल हो गया तथा वह अपने को पुण्यहीन समझकर अपनी निंदा करने लगा। मैंने न तो पूर्व भव में धर्म का पालन किया था, न तप किया था, न चारित्र का पालन किया था, न दान दिया था और न ही जिनेन्द्र देव की पूजा की थी, इसकारण मेरे पापकर्मोदय से मेरी रूपवती स्त्री का राजा ने जबरदस्ती हरण कर लिया।

संसार में सुख देने वाले इष्ट पदार्थों का जो वियोग होता है तथा स्त्री, धन आदि का जो वियोग होता है तथा दुष्ट, शत्रु, चोर, रोग, क्लेश, दु:ख आदि दुष्ट अनिष्ट पदार्थों का जो संयोग होता है वह सब पापरूप शत्रु द्वारा किया हुआ होता है। मनुष्यों को जब तक पूर्वभव में उपार्जित अनेक दु:ख देने वाले पापकर्मों का उदय है वहाँ तक उसको उत्तम सुख कभी नहीं मिलता है। यदि पापरूपी शत्रु न हो तो मुनिराज घर छोड़कर वन में जाकर तपश्चरणरूपी तलवार से किसको मारते हैं ? संसार में वही सुखी है जिसने अलौकिक सुख प्राप्त करने के लिये चारित्ररूपी शस्त्र के प्रहार से पापरूपी महाशत्रु को मार दिया है। इसलिये मैं भी सम्यक्चारित्ररूपी धनुष को लेकर ध्यानरूपी बाण से अनेक दु:खों के सागर पापरूपी शत्रु का नाश करूँगा।

इस प्रकार हृदय में विचार करके सेठ पुत्र सुदत्त काललब्धि प्रकट होने के कारण स्त्री, भोग, शरीर और संसार से विरक्त हुआ। तत्पश्चात् वह दीक्षा लेने के लिये सुदत्त नामक तीर्थंकर के समीप पहुँचा और शोकादिक को त्यागकर तपश्चर्या के लिये तैयार हुआ समस्त जीवों का हित करने वाले तीर्थंकर भगवान को नमस्कार करके उसने मुक्तिरूपी स्त्री को वश करने वाला संयम धारण किया। वह विरक्त होने के कारण बहुत दिनों तक शरीर को दु:ख पहुंचाने वाले कार्योत्सर्ग आदि अनेक प्रकार की कठिन तपस्या करने लगा। मोक्ष प्राप्त करने के लिये उन मुनिराज ने प्रमाद रहित होकर मरण पर्यंत

ध्यान का अभ्यास किया तथा धर्मध्यान किया। अन्त में उन्होंने समाधि धारण करके मन को शुद्ध किया, समस्त आराधनाओं का आराधन किया। अपने हृदय में जिनेन्द्रदेव को विराजमान किया तथा अत्यन्त जागृति पूर्वक प्राणों का त्याग किया। इससे सेठ का जीव उस चारित्ररूपी धर्म के प्रभाव से ईशान स्वर्ग में महाऋद्धि को धारण करने वाला देव हुआ। उसकी आयु एक सागर की थी। वहाँ वह देवांगनाओं के साथ सुख भोगता और अनेक प्रकार की क्रीड़ा करता था। वह देव स्वर्गलोक तथा मनुष्यलोक की जिनप्रतिमाओं की महाविभूति सहित पूजा करता था।

अपनी आयु पूर्ण कर वह देव इसी जम्बूद्वीप के सुकच्छ देश में शिखरों पर देवियों के भवनों से शोभायमान विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के कंचनतिलक नगर के महेन्द्रविक्रम नामक विद्याधर की रानी अनलवेगा के यहाँ अजितसेन नाम का पुत्र हुआ।

यहाँ राजपुत्र नलिनकेतु जिसने सेठ पुत्र सुदत्त की भार्या प्रीतिकरा का अपहरण किया था, को भी उल्कापात देखकर वैराग्य होने से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। उसने पहले जो दुश्चरित्र पालन किया था उसकी वह निन्दा करने लगा तथा हृदय में परस्त्री छोड़ने का संकल्प करके अपने पाप का प्रायश्चित करने लगा।

वह विचार करने लगा कि अरे रे, मैं बहुत पापी हूँ, परस्त्री भोगी हूँ, लंपटी हूँ, अधम हूँ, विषयांध हूँ तथा सैकड़ों अन्याय करने वाला हूँ। स्त्रियों के शरीर में अच्छा क्या है? वह तो चमड़ी, हड्डियों और आंतड़ियों का समूह है। **संसार में जितने अमनोज्ञ पदार्थ हैं, शरीर तो उन सबका आधार तथा विष्ठा आदि दुर्गन्धमय चीजों का घर है।** यह शरीर सप्त धातुओं से निर्मित है, स्त्रियों का शरीर गोरी चमड़ी से ढँका हुआ है एवं वस्त्राभूषण युक्त होने से सुशोभित लगता है। संसार में ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो उसका सेवन करेगा ? **ऐसी स्त्री के प्रति अनुराग तो नरकरूपी घर का दरवाजा है तथा स्वर्ग-मोक्षरूपी घर के लिये अर्गला (व्यवधान) समान है। समस्त पापों का उत्पादक है।** चंचल हृदय वाली स्त्री धर्म रत्नों के खजाने को चोर

के समान है। यह पापिनी मनुष्यों का भक्षण करने के लिये दृष्टिविष सर्पिनी के समान है। मूर्ख जीव स्त्रियों के समागम से व्यर्थ ही प्रतिदिन अनेक पापों का उपार्जन करते हैं। संसार में कितने पुण्यवान् पुरुष ऐसे हैं कि जो अपनी स्त्री को छोड़कर संयम धारण करते हैं, परन्तु मेरे जैसा नीच कौन होगा जो परस्त्री को चाहता है? इस प्रकार अपनी निन्दा करके उसने पूर्वोपार्जित पापों को नष्ट किया और पापरूपी वन को जलाने के लिये अग्नि समान संवेग को बलवान किया।

तत्पश्चात् चारित्र धारण करने की इच्छा करता हुआ वह राजपुत्र नलिनकेतु उस स्त्री तथा राज्य भोगों को छोड़कर सीमंकर मुनि के पास पहुँचा। उसने दु:खरूपी दावानल को बुझाने के लिये वर्षा समान उन मुनिराज के दोनों चरण युगल को नमस्कार किया बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर दीक्षा धारण करने पर उसका संवेग गुण बहुत बढ गया, इस कारण उसने घोर तपश्चर्या की तथा समस्त तत्त्वों से परिपूर्ण आगम का बहुत अभ्यास किया। नलिनकेतु मुनिराज ने क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर प्रथकत्व-वितर्क नामक शुक्लध्यानरूपी तलवार से दुष्ट कषायरूपी शत्रुओं को मारकर तीन वेदों को नष्ट किया। दूसरे शुक्ल-ध्यानरूपी वज्र से शेष घातिकर्मरूपी पर्वत को चूर-चूर कर दिया और साक्षात् केवलज्ञान प्रगट किया। उसी समय इन्द्रों आदि ने आकर उनकी पूजा की और सुख के सागर जिनराज ने अघातिकर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर शाश्वत् मोक्षपद प्राप्त कर लिया।

प्रीतिकरा ने भी अपने दुराचार की निन्दा की और मोक्ष की प्राप्ति के लिये संवेग धारण करके सुव्रता नामक आर्यिका के समीप जा पहुँची। उसने घर सम्बन्धी समस्त परिग्रह का त्याग करके संयम धारण किया तथा कर्मरूपी तृण को जलाने वाली अग्नि को शुद्ध करने लिये चन्द्रायण तप किया। अन्त में संन्यास धारण करके विधिपूर्वक प्राणों का त्याग किया, इस पुण्य से वह अनेक सुख तथा गुण के समुद्र ऐसे ईशान सवर्ग में उत्पन्न होकर वहाँ के दिव्य भोग भोगते हुए आयु पूर्ण करके वहाँ से चयकर शुभकर्म के उदय से अब तेरी पुत्री हुई है। अत: पूर्व जन्म के स्नेह से जिसका मन राग से अन्धा

हो रहा है ऐसे इस अजितसेन ने इस विद्याधरी को जबरजस्ती विकार पैदा करने का प्रयत्न किया। **"पूर्व जन्म के संस्कार से इस लोक में भी जीवों का स्नेह, बैर, गुण, दोष, राग-द्वेष आदि सब चले आते है"- ऐसा समझकर बुद्धिमान पुरुष शत्रुओं के लिये भी कभी विषाद नहीं करते। अतः तू भी बैरभाव को छोड़ दे।**

राजा वज्रायुध के मुख से अपने पूर्वभव का वृतान्त सुनकर वह शान्तिमति विद्याधरी संसार से उदास हो गई। उसने अपना विवाह न करके पिता आदि परिवार को त्याग कर देवों द्वारा पूज्य ऐसे क्षेमंकर तीर्थंकर के समीप जाकर जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा की तथा नमस्कार कर धर्मामृत का पान करने के लिये सभा में जा बैठी। उसने अपने कानों द्वारा जन्म-मरण तथा वृद्धापन के दाह को दूर करने वाला, आत्मरस प्रगट करने वाला तथा मुनियों के भी समझने योग्य उन तीर्थंकर के मुखरूपी चन्द्र से झरते धर्मामृतरूपी उत्तमरस का पान किया।

तत्पश्चात् वह सुलक्षणा नाम की गुणशालिनी श्रेष्ठ आर्यिका के समीप पहुँची और भव के अभाव करने वाला चारित्र धारण किया। उस शान्तिमति विद्याधरी ने एक साड़ी के सिवाय अन्य समस्त बाह्य परिग्रह का त्याग किया तथा मिथ्यात्व आदि अन्तरंग परिग्रह का त्याग किया। संवेग गुण से सुख के सागर समान कठिन तपस्या की और शास्त्रों का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन की विशुद्धि धारण की, अन्त में चार प्रकार का सन्यास धारण किया। एकाग्रचित्त से भगवान श्री जिनेन्द्रदेव का स्मरण किया, भावनाओं का चिन्तवन किया तथा समाधिपूर्वक प्राणों का त्याग करके सम्यग्दर्शन के प्रभाव से स्त्रीलिंग का छेद करके ईशान स्वर्ग में महाऋद्धि को धारण करने वाला देव हुई।

वह देव अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव जानकर मुनि तथा जिनप्रतिमा की पूजा करने के लिए पृथ्वी पर आया। उसीसमय उसने मुनिराज अजितसेन (शान्तिमति को विद्यासिद्धि में विघ्न करता था वह) और वायुवेग (शान्तिमति के पिता) के दर्शन किये। जो अतिशय वैराग्य के कारण घर का त्याग करके

संयम धारण कर मुनि हो गये थे तथा तपस्या और ध्यान से उन दोनों को केवलज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त हुए थे अर्थात् दोनों को उसी समय केवलज्ञान प्रगट हुआ था। वे दोनों भगवान देवोपुनीत गंधकुटी में भी रत्नजड़ित सिंहासन से चार अंगुल ऊपर विराजमान थे। उनके ऊपर चंवर ढुल रहे थे, बहुत प्रकार की विभूति उत्पन्न हुई थी। वे अष्ट-प्रतिहार्यों के मध्य विराजमान थे। असंख्य देवगण उनकी सेवा कर रहे थे। वे चार संघों से सुशोभित थे। समस्त जीवों के हित का उपदेश उनके द्वारा प्रसारित हो रहा था। अनेक प्रकार से उनकी महिमा थी। समस्त इन्द्र एकसाथ मिलकर उन दोनों जिनराज भगवंतों की पूजा कर रहे थे। उनको अनन्तसुख प्राप्त हो गया था तथा अनेक मुनिराज उनको वंदन कर रहे थे।

उन दोनों के दर्शन करके वह देव विचारने लगा – अहा ! आश्चर्य है !! कहाँ तो भय से व्याकुल विषयांध विद्याधर और कहाँ देवों द्वारा पूजित तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव ! कहाँ तो मेरे वृद्ध पिता और कहाँ सर्व पदार्थों को एकसाथ देखने वाले श्री केवली भगवान ! संसार में बड़े-बड़े पुरुषों को भी आश्चर्य उत्पन्न होने योग्य बात है। अहा ! पहले मुनिराज ने कहा था कि जीव में अनन्त शक्ति है वह मिथ्या कैसे हो? क्योंकि मैंने इस समय वह शक्ति साक्षात् देखी। इसप्रकार मन में चिन्तवन करते-करते केवली को तीन प्रदक्षिणा देकर मस्तक झुकाकर वन्दन किया तथा उनके गुणगान गाते हुए स्तुति की और स्वर्गलोक के दिव्य द्रव्यों से भक्तिपूर्वक पूजा की और आश्चर्यकारी धर्म से प्रसन्न होकर वह देव स्वर्ग में गया।

इसप्रकार, परस्त्री हरण करने वाले मोहान्ध नलिनकेतु ने उसी भव में सादि-अनन्त सुख को प्राप्त किया और पूर्व के स्नेह के संस्कार वश शान्तिमति विद्याधारी पर कामासक्त होने वाले अजितसेन विद्याधर तथा उससे बदला लेने को तत्पर हुए शान्तिमति के पिता भी शाश्वत सुख को प्राप्त हुए – यह सब अनन्तशक्ति स्वरूप चैतन्य की शरण/अनुभूति का ही चमत्कार है।

– शान्तिनाथ पुराण के आधार से

विलक्षण आहुति

राजा जगतसिंह	– जयपुर नरेश।
दीवान झूथारामजी	– जयपुर के महामात्य।
दीवान अमरचन्दजी	– जयपुर के अमात्य।
फतेहलालजी	– दीवान अमरचन्दजी के पुत्र।
एजेंट स्मिथ	– ईस्ट इंडिया कम्पनी का अफसर।
एजेंट व दो साथी	– छावनी के अधिकारी।
	डॉक्टर, जज, जेलर, चाँडाल, सेवक आदि।

प्रथम दृश्य

समय : सायं।

(दीवान अमरचन्दजी अपने बैठकखाने में तख्त पर बैठे हैं। पास ही कप्तान स्मिथ बैठे हैं। कमरा शाही ढंग से सजा हुआ है। दीवान अमरचन्दजी अपनी शुद्ध अहिंसक भावना व कार्यों के लिए जयपुर राज्य के बाहर भी विश्रुत हो चुके हैं। कप्तान स्मिथ को अमरचन्दजी से बातें करने में आनन्द आता है। यही कारण है कि वे बातों में समय का ध्यान नहीं रखते।)

स्मिथ – दीवान साहब, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब मैंने सुना कि आप अकेले ही शेर के पिंजड़े में घुस गये और वह भी निहत्थे।

अमरचन्द – कप्तान साहब ! आश्चर्य की कोई बात नहीं। शेर भी हम आप जैसा ही एक प्राणी है। यदि हमारे हृदय में दूसरे के प्रति बुराई ने जन्म न लिया हो तो कोई कारण नहीं कि दूसरा प्राणी हमारे प्रति बुरा व्यवहार करे।

स्मिथ – फिर भी शेर खूँखार दुष्ट जानवर होता है, उसका काम ही है अन्य प्रणियों को मारना।

अमरचन्द – खूँखार होते हुए भी वह हमारी तरह सुख-दुख, शत्रु-मित्र का अनुभव करता है। उसकी आत्मा और हमारी आत्मा में तनिक भी

अंतर नहीं। यह जो शरीर के आकार-प्रकार का अंतर दिखता है वह पौद्गलिक विकार है, कर्मजनित उपाधियाँ है। जैन शुद्ध अहिंसक होते है वे चींटी मारना भी बुरा समझते हैं। अंत:करण की विशुद्धता आवश्यक है।

स्मिथ – आपने उसे दो दिन से माँस खाने को नहीं दिया। अतएव आप उसके शत्रु कहलाये। कहावत है – "भूखा आदमी शेर बराबर" फिर वह तो साक्षात् भूखा शेर था। अरे बाप रे..मेरे तो होश गायब हो जाते।

अमरचन्द – यह सच है कि मैंने उसे माँस नहीं दिया, पर क्षुधा निवारणार्थ पकवान मिष्ट भोजन तो दिया। वह उन्हें खाकर भी उदर की ज्वाला शमन कर सकता था।

स्मिथ – बेचारा; जन्मजात संस्कारों के अनुसार माँस से ही तृप्त हो सकता था, इसमें उसका अपराध नहीं दीवानजी।

अमरचन्द – आपका कथन यथार्थ है। जब वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहता तो मैं ही क्यों अपना स्वभाव परिवर्तित करूँ ? एक प्राणी की तृप्ति हेतु अनेक प्राणियों का वध। उदर पूर्ति के लिए हिंसा ही अनिवार्य नहीं।

स्मिथ – खैर, ये तो रहे आपके सिद्धांत। पशु इन सब बातों का क्या समझे ?

अमरचन्द – *कप्तान साहब ! मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य,* पशु-पक्षी यहाँ तक कि फल-फूल वनस्पति पर समान रूप से पड़ता है। फिर उसे मुझसे शत्रुता का अंदेशा होता कैसे ?

स्मिथ – आपकी प्रत्येक अनुभव-गत बात को ठीक मानता हूँ। इतने पर उसका टूट पड़ना असंभव नहीं था दीवानजी !

अमरचन्द – तब फिर प्रयोग हो जाता। जीवन भर की दृढ़ता की परीक्षा हो जाती।

स्मिथ – तो क्या आपको मौत की छाया से भय नहीं लगता दीवान साहब !

अमरचन्द – भय ! भय किस बात का कप्तान साहब ! अरे, एक दिन मरना ही है। डरने से मृत्यु लौटती नहीं। फिर हँसकर ही क्यों न उसका आह्वान किया जाय ?

स्मिथ – *(भय मिश्रित आश्चर्य से)* अत्यन्त विचित्र प्रयोग बतला रहे हैं आप ।

अमरचन्द – विचित्र नहीं, किन्तु सरल है। घबराने से अशुभ कर्मों का बंध होता है। "जैन जन केवल मृत्यु के क्षणों में शांति प्राप्ति हेतु जीवनभर कठिन साधना व आराधना करते हैं।"

स्मिथ – सचमुच आपको "वीर शिरोमणि" कहना अनुचित न होगा।

अमरचन्द – अभी नहीं, मृत्यु के पश्चात्। विद्यार्थी परीक्षा में सफल होने पर ही डिग्री हासिल करता है।

स्मिथ – *(हँसकर खड़े होते हुए हाथ मिलाते हैं)* अच्छा, अब चलूँ। फिर मिलूँगा। *(अमरचन्दजी हाथ जोड़ते हैं और दरवाजे तक उनके साथ आते हैं,* अचानक स्मिथ अपनी जेब से पिस्तौल निकालकर अमरचन्दजी की ओर ऐसे घूम पड़ते हैं, मानो अभी शूट कर देंगे।)

अमरचन्द – *(मुस्कुराते हुये)* कोई फायदा नहीं होगा कप्तान साहब! *(स्मिथ मुस्कुराते हुये जेब में पिस्तौल रख लेते हैं)* मैंने कहा न कि मृत्यु जब आये तो उससे दो कदम आगे बढ़कर मिलने से परम शांति मिलती है एवं कर्मों के बंध कट जाते हैं।

स्मिथ – तब तो इसका एक्सपेरीमेंट काफी दिलचस्प होगा।

अमरचन्द – बेशक ! इस समय आपके साथ किसी को भेज देता हूँ।

स्मिथ – क्या आवश्यकता ?

अमरचन्द – रात्रि अधिक हो गई है। अकेले जाना उचित नहीं।

स्मिथ – *(हँसकर)* अकेला कहाँ हूँ ? दीवानजी, *(जेब से पिस्तौल निकाल कर बतलाते हुए पुनः जेब में रख लेते हैं)* ये जो मेरे साथ है, मौत का एम्बेसेडर।

अमरचन्द – फिर भी अंधेरा बढ़ता जा रहा है। कुछ आदमी छावनी तक आपको पहँचाने चले जायेंगे, तो हानि नहीं। कहीं आज ही प्रयोग न हो जाये ?

स्मिथ – आपकी इच्छा। *(दीवानजी पुन: बैठक में आकर गद्दी पर बैठ जाते हैं। पालथी मारकर दोनों हाथ घुटनों पर उल्टे रखे हैं। कुछ विचारने की मुद्रा में हैं। सेवक का प्रवेश, संध्या समय स्मिथ साहब के साथ निकल जाने के कारण वे भोजन नहीं कर पाये थे।)*

सेवक – सरकार ! रसौड़ा जीम लीजिए । मालकिन आपकी बाट देख रही हैं।

अमरचन्द – *(किंचित् चौंककर)* अरे पागल ! जैनियों के घर रात्रिभोजन नहीं होता। मालकिन तुझे जिमाने बैठी होंगी।

सेवक – भूल हुई सरकार ! माफ करें।

अमरचन्द – कोई बात नहीं, अभी तुम नये-नये आये हो। जाओ, छोटे सरकार को भेज दो।

सेवक – जी। *(जाता है।)*

(अमरचन्दजी उसी मुद्रा में बैठे रहते हैं। फतेहलाल का प्रवेश)

अमरचन्द – बैठ जाओ। देखो बेटा ! अपने घर कुछ नौकर रात्रिभोजन करते हैं, यह ठीक नहीं, इसे बंद करो।

फतेहलाल – जी, पिताजी, अभी जाकर माँ साहब से कह देता हूँ। कल से कोई भी रात्रि को नहीं खायेगा।

अमरचन्द – दूसरी बात यह है कि तुम खजांची से राजा साहब के नाम परचाना लिखवादो कि आज के दिन से दीवान अमरचन्द राज्य से वेतन नहीं लेंगे।

फतेहलाल – यह भी हो जायेगा। और कुछ ?

अमरचन्द – चमनलाल लोहे वाले को जानते हो न ? उनका कारोबार

बिगड़ गया है। पारिवारिक समस्या गंभीर हो उठी है। खानदानी आदमी हैं। उनको सहयोग देना परमावश्यक है। पूर्व पुण्य की प्रबलता के संयोग से अपने घर प्रचुर धन है, उसका सदुपयोग होना चाहिये। अतएव सौ लड्डुओं का टोकरा भेज दो, प्रत्येक लड्डु में एक-एक अशर्फी रहे।

(पुत्र फतेहलाल पिताजी की त्यागवृत्ति से पूर्णत: परिचित थे और रात के अंधेरे में दान करने के चिर अभ्यस्त) इसलिए तुरन्त कहा –

फतेहलाल – कल प्रात: ही आपकी आज्ञा का पालन होगा। आप निश्चिंत रहें पिताजी।

अमरचन्द – तुम जाओ। अब मैं तनिक राजकाज का हिसाब देख लूँ। कल सब निबटा देना है। और कल ही तुम्हें सब समझा दूँगा।

फतेहलाल – जी ! *(उठकर जाने लगते हैं, इतने में बड़े दीवान झूथाराम जी दरवाजे पर दिखाई देते हैं। हाथ जोड़कर)* ताऊजी, इतनी रात गये आपने कष्ट किया ? क्यों न मुझे ही बुलवा लिया होता ?

(अमरचन्दजी की दृष्टि झूथारामजी पर जाती है और खड़े हो जाते हैं)

झूथाराम – कप्तान स्मिथ साहब अभी-अभी आपके पास से गये थे न ? किसी ने उन्हें पीछे से पीठ में छुरा भोंक दिया।

अमरचन्द – *(आश्चर्य से)* छुरा भोंक दिया ! बुरा हुआ भैया ! मैं उनके साथ आदमी भेज रहा था, पर वे न माने *(गहरी उसांस ले)* लाश कहाँ है ?

झूथाराम – सड़क से उठवाकर पीलखाने में रखवा दी है। राजा साहब को खबर देने के पहले मैंने आपको बतला देना भी उपयुक्त समझा।

अमरचन्द – *(दुखित होकर)* अच्छा किया। अब जल्दी से जल्दी अपराधी और लाश दोनों को एक साथ फिरंगियों के सुपुर्द किया जा सके।

झूथाराम – एक टुकड़ी इसी काम के लिए नियुक्त करके आ रहा हूँ। पर इसका कुछ राजनैतिक कुफल न निकले। दरअसल यही चिंता है।

अमरचन्द – चिंता तो उचित है, अनुचित जो हो गया है। परन्तु आपकी सुलझी हुई प्रखर बुद्धि पर संपूर्ण राज्य को पूर्ण विश्वास है। *(प्रायश्चित के स्वर में)* क्या बताऊँ भैया ! मुझसे भूल हो गई। मैंने आदमी साथ में जाने को कहा, वे न माने और मैं मान गया। मेरा मानना ही भूल बन गई। किसी को साथ कर दिया होता।

झूथाराम – होनहार को किसने मेटा है, भाई ! ऐसा ही होना होगा, अन्यथा कैसे हो सकता है ?

अमरचन्द – *(उदास से)* हाँ....पर मैं कर्तव्य से चूक गया। *(डबडबाई आँखों से)* थे बड़े अच्छे आदमी कप्तान स्मिथ। नये-नये प्रयोग करने में ऐसा साहस रखने वाले सैकड़ों वर्षों में कोई विरले ही होते हैं। *(बहते हुए आँसू पोंछते हैं परन्तु आँसू हैं कि रुकने का नाम नहीं लेते। भर्राये गले से)* अभी-अभी उन्होंने मुक्त हास्य के मध्य मुझसे कहा था 'एक्सपेरीमेंट ही सही'। हाय उनका वह एक्सपेरीमेंट ही हो गया। उफ ! कैसा नृशंस घृणित कार्य हो गया मेरी अदूरदर्शिता से। गलती मुझसे हुई है बड़े भाई और पश्चात्ताप भी मुझे ही करना होगा। इससे राज्य का बड़ा भारी अकल्याण हो सकता है। आप शीघ्रातिशीघ्र चारों ओर समुचित प्रबन्ध कर लें ताकि शहर में शान्ति बनी रहे। राज्य का उत्तरदायित्व आपके कंधों पर है।

झूथाराम – *(हाथ जोड़कर)* अच्छा मैं चलता हूँ। देखूँ वहाँ कुछ सुराख लगा क्या ?

अमरचन्द – *(परम शान्ति से)* बेटा, रात्रि काफी हो गई है। जाओ तुम सो जाओ।

फतेहलाल – आप भी आराम करिये पिताजी !

अमरचन्द – हाँ, हाँ मैं भी सो रहा हूँ। *(फतेहलाल का जाना)*

(अमरचन्द जी उठकर शयनगृह में आते हैं, दरबारी पोशाक उतार कर सादे कपड़े पहिनते हैं और प्रभु स्मरण कर बिछी हुई शैय्या पर सो जाते हैं। शीघ्र ही निद्रा उनकी पलकों में समा जाती है। अभी-अभी

कुछ क्षण पहिले महान् दुर्घटना घट गई है, उनकी प्रशान्त मुख मुद्रा से ऐसा आभास परिलक्षित नहीं होता। फतेहलाल को नींद नहीं आती। वह पिता को बार-बार दबे पांव देखने आते हैं। दीवान जी की निर्विकल्प निद्रा देखकर उन्हें आश्चर्य होता है।)

फतेहलाल – *(स्वगत)* चलो अच्छा हुआ, पिताजी की झपकी लग गई। कप्तान स्मिथ की मृत्यु सुनकर करुणार्द्र हो उनकी आँखों से सावन भादों सी झड़ी लग गई थी। पिताजी को तीव्र मानसिक आघात पहुँचा है। ऐसी ही शान्ति से रात कट जाये तो अच्छा है।

फतेहलाल – *(दूसरी बार आते हैं, स्वगत)* धन्य है पिताजी को। मैं तो समझा था कि आज चिंता के कारण वे सो न सकेंगे। पर मेरा कोरा भ्रम ही निकला। सचमुच मैं उनकी गम्भीरता का अनुमान नहीं लगा पाता। वे हर परिस्थिति को शान्ति, समता तथा संतोष के साथ अपना लेते हैं।

(परदा गिरता है)

दृश्य द्वितीय

समय : तीसरे दिन दोपहर।

(पॉलिटिकल एजेंट का अपने दो साथियों के साथ आना। राजा जगतसिंह मंत्रणागृह में अपने दीवान द्वय श्री झूथारामजी व श्री अमरचन्दजी के साथ बैठे हैं। बीच कमरे में एक बड़ी सी मेज है, उसके चारों ओर छह आलीशान कुर्सियाँ हैं। उस पर क्रमश: राजा जगतसिंह के दोनों ओर दोनों दीवान और एजेंट के दायें-बायें दोनों साथी बैठे हैं। बात कप्तान स्मिथ की हत्या पर चल रही है।)

जगतसिंह – *(सहानुभूति से)* कप्तान स्मिथ की हत्या पर हमें अत्यन्त खेद है। वे हमेशा यहाँ आया करते थे। हमारे उनके बड़े अच्छे संबंध थे। समझ में नहीं आता कि अचानक किसने उनकी हत्या कर दी। जहाँ कम्पनी सरकार ने अपना एक अच्छा आफिसर खोया है, वहाँ हमने अपना एक घनिष्ट

मित्र। कम्पनी सरकार से हमारी गहरी संवेदना है और हमारे राज्य में उनकी हत्या होने के कारण मैं क्षमा प्रार्थी भी हूँ।

एजेन्ट – आपका बाट बील्कुल ठीक हय, अमारा कम्पनी सरकार कप्तान स्मिथ के मर्डर से बहोट दुखी हय। और उसको बहोट जाडा मिस करटा हय। जयपुर स्टेट में इस क़दर बडअमनी देखकर कम्पनी छावनी का बोर्ड ने यह टय किया हय कि जब टक गवर्नर जनरल का मुकम्मिल आर्डर नेई मिलटा; टव टक जयपुर शहर पर छावनी का टेम्परेरी कब्जा रहेगा।

झूथाराम *(रोष से)* – यह सर्वथा असंभव है। जयपुर में किसी प्रकार की बदअमनी नहीं है। आज तीन दिन हो गये, कहीं भी अशान्ति नहीं फैली, न ही किसी दंगे वगैरह की खबर मिली। स्मिथ साहब की हत्या का तो हमें भी रंज है परन्तु उनकी हत्या की ओट लेकर, हमारे राज्य पर अधिकार जमाने का उपक्रम सफल नहीं हो सकता। किसी एक पागल अपराधी के दुष्कृत्य को संपूर्ण राज्य के षडयन्त्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

एजेन्ट – *(शान्ति से)* ठीक हय, ठीक हय ! अम टुमारा ख्याल का कडर करता हय, पर इटना बरा आफीसर का खून होना मामूली नहीं हय डीवान साहब ! इसमें बरा ग्रुप होना चाहिए। मर्डर करके राज्य भर की काँसप्रेसी (षडयन्त्र) को पागलपन में वहलाया नेई जा सकटा। किडर हय वो पागल मुजरिम। अमारे सामने बुलाओ, अम उससे पूछेगा। पूरे ग्रुप का पटा लगायगा *(व्यंग से मुस्कारते हुए)* टव डूध का डूध और पानी का पानी हो जाएगा।

जगतसिंह – मुजरिम की उसी दिन से सरगर्मी के साथ खोज हो रही है। मिलते ही मैं उसे आपके हवाले कर दूँगा।

एजेन्ट – अच्छा ठीक हय, पर जब टक मुजरिम नेई मिलटा, टव टक बोर्ड का आर्डर मानना होगा।

अमरचन्द – *(उदासी से धीमे स्वर में)* बोर्ड का आर्डर कहाँ है ?

एजेन्ट – *(साथी से कागज का मुठिया लेकर देते हुए शान से)* ये हय आर्डर। *(दीवान अमरचन्दजी पढ़कर सुनाते हैं)*

जयपुर शहर में हमारे अफसर कप्तान स्मिथ की हत्या से कम्पनी सरकार अत्यन्त दुखी है और अनुभव करती है कि आपके राज्य में हमारे अफसरों का जीवन खतरे में है। अनुमानत: यह कोई बड़ा भारी षडयन्त्र है। अपराधी को शीघ्र खोजकर हमें सौंपा जाय। उसके मिलने तक जयपुर शहर पर छावनी का अस्थाई रूप से अधिकार रहेगा।

अमरचन्द – *(मुठिया लपेट कर खड़े हो जाते हैं)* राजा साहब की ओर से हम छावनी बोर्ड के आर्डर का सम्मान करते हैं। अपराधी मिल चुका। उसे अभी आप अपने साथ साँगानेर ले जा सकते हैं। *(बैठे हुए सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित हो उठते हैं।)*

एजेन्ट – डीवान साहब ! ख्याल रखना माँगटा कि किसी ऐरा-गैरा को अमारे हाथ पकड़ा देने से काम नेई चलेगा। अम रियल मुजरिम मांगटा। ये मामला गवर्नर जनरल टक जायेगा। वहाँ टक जुर्म साबिट होना माँगटा।

अमरचन्द – *(कागज का मुठिया राजा साहब को देकर)* जुर्म प्रमाणित है। सुप्रीम कोर्ट भी अपराध को किसी प्रकार झूठा सिद्ध नहीं कर सकती। (दृढ़ता पूर्वक) यह दीवान अमरचन्द का दावा है।

एजेन्ट – *(मेज पर मुट्ठी मारकर तनिक रोष से)* नेई नेई, टुम ऐसा चेलेंज कैसे कर सकता हय ? मुजरिम किडर हय ? अमारे सामने लाओ। अब्बी-अब्बी अम सब सीक्रेट बाट पूछेगा। इसमें किसका किसका हाथ हय ? ये मामूली बाट नेई, पॉलिटिकल साजिश मालूम पड़ता हय। सारे शहर की बडअमनी का नटीजा। अमको मुजरिम बटाना मांगटा।

अमरचन्द – *(मुस्कराते हुये)* तो फिर किसी कोर्ट के पहले आप ही नजर दौड़ाइये एजेन्ट साहब ! मुजरिम यहीं उपस्थित है। मैं ही मुजरिम हूँ। मेरे पास कप्तान स्मिथ घंटों बैठते थे और लम्बी चौड़ी फिलास्फी बघारा करते थे। मैं व्यक्तिगत तौर पर उसके उद्देश्य को जानता था। मित्रता होते हुए भी मुझे उससे सख्त नफरत थी। वह मौत को साहसपूर्वक चुनौती देता था। एक्सपेरीमेंट करना चाहता था। मैंने उसके साहस की परीक्षा की और लौटते

समय रास्ते में हत्या करवा दी। इस हत्या का कोई राजनीतिक कारण अथवा साजिश नहीं थी। जयपुर भर को ज्ञात है कि उस रात कप्तान स्मिथ मेरे घर आये थे। मैंने उन्हें छलपूर्वक बगैर किसी साथी के अकेले ही रवाना किया। अब आपकी बारी है मुझे झूठा सिद्ध करने की एजेन्ट साहब !

झूथाराम – *(आवेश में खड़े होकर)* नहीं-नहीं न......।

जगतसिंह – नहीं, नहीं ये क्या कह रहे हैं दीवान जी ! आप होश में तो हैं ?

एजेन्ट – *(हक्का-बक्का सा आँखें फाड़कर देखता है फिर मानों होश में आकर)* नेई नेई ऐसा नेई होने सकटा। तुम आदमी हय। टुम जैनी लोग चींटी को नेई मारटा, वाटर का वैक्टीरिया टक नेई मारटा। अम टुमको पहले से पर्सनली जानटा हय। तुम एक डोस्ट ऑफीसर को कैसे मार सकटा हय।

अमरचन्द – आपकी यह एकतरफा बात नहीं मानी जावेगी एजेन्ट साहब ! *(किञ्चित मुस्कुराकर)* जयपुर की सरकार भी प्रीबी कौंसिल तक पहुँच सकती है। वहाँ ब्रिटिश कानून आपके वचनों पर जरा भी विश्वास नहीं करेगा। मैं कप्तान स्मिथ का खूनी हूँ और अन्त समय तक अपने वचनों पर दृढ़ रहूँगा।

(अपनी पगड़ी उतार कर राजा जगतसिंह की गोद में रखकर) मैं इसी क्षण महान् जयपुर राज्य के दीवानी पद की इस सम्मान्य पगड़ी को राजा साहब को सादर सौंपकर अपने पद से मुक्त होता हूँ; ताकि इस पर कोई दयालु परोपकारी, विश्वासपात्र परिश्रमी सज्जन आसीन होकर राजा-प्रजा की उचित सेवा कर सके।

राजा जगतसिंह व झूथारामजी दीवान अमरचन्दजी के त्याग पर अत्यन्त विमोहित हो जाते हैं। गले भर आने के कारण मुँह से बोल नहीं फूटते। वे एकटक पगड़ी की ओर देखते रह जाते हैं।

एजेन्ट : *(क्रोधपूर्वक)* डीवान अमरचन्द टुम जानता हय इसकी सजा क्या होगी ?

अमरचन्द : *(हँसकर)* अच्छी तरह एजेन्ट साहब ! मुझे शीघ्रातिशीघ्र साँगानेर ले चलिये; ताकि दीवान भाई के सन्मुख अन्य अपराधियों की खोज की नई समस्या न उपस्थित हो जाये। *(कुछ क्षण के लिये आँख मूंदकर ध्यानस्थ हो जाते हैं। प्रभु स्मरण कर परोक्ष नमस्कार करते हैं। फिर खड़े होकर राजा साहब व झूथारामजी को लक्ष्य करते हुए कहते हैं।)*

मेरे आत्म बन्धुओ ! जीवन भर के अपराधों की क्षमा चाहता हूँ। जाने अनजाने में प्रमादवश जो भूलें हुई हैं, उनको भूल जाइये एवं क्षमा प्रदान कर मुझे कृतार्थ कीजिए।

(राजा साहब व झूथारामजी के नेत्र सजल हो उठते हैं। चाहते हुए भी उनके मुख से बोल नहीं निकलते। उत्तर में वे केवल जड़वत् दोनों हाथ जोड़ लेते हैं)

अमरचन्द : चलिये साहब !

एजेन्ट : टुमने स्मिथ साहब का मर्डर कर बरा भारी जुर्म कर अच्छा नेई किया। *(कुछ सख्ती से चारों चले जाते हैं)*

(कुछ क्षण दोनों व्यक्ति मौन रहते हैं)

जगतसिंह – दीवानजी ! अमरचन्दजी साहब सीने में मर्मभेदी घाव कर गये।

झूथाराम – हाँ महाराज ! उन्होंने अपना अगला कदम उठाने के पहले कुछ आभास भी न होने दिया। कदाचित् सोच-विचार करने पर कोई दूसरा मार्ग निकल आता।

जगतसिंह – *(आँसू पोंछते हुए)* निःशंक था वह वीर। आज जयपुर राज्य सूना हो गया, दीवानजी सूना हो गया।

झूथाराम – अमरचन्दजी जन-जन के प्यारे थे महाराज ! घर-घर उनके गीत गाये जाते हैं। उनकी दयालुता, दानवृत्ति, परोपकारिता से जयपुर का बच्चा-बच्चा परिचित है। आज जयपुर उनका ऋणी है। उनकी इस सरलता पर तो महान् देश भी लाख-लाख बार न्योछावर है।

जगतसिंह – त्यागवृत्ति एवं विरक्ति के लिए तो वे विश्रुत थे ही, परन्तु आज वह महान् वीर त्याग की पराकाष्ठा लाँघ गया। धन्य हैं अमरचन्द। मेरा कोटि-कोटि नमन है। उनके पद की पूर्त्ति इस जीवन में अब न देख सकूँगा।

झूथाराम – मेरी बुद्धि अभी भी उपयुक्त कदम उठाने में सक्षम ज्ञात नहीं होती। महाराज ! मैं पंगु हो गया। मेरा मार्गदर्शक साथी मुझसे छूट गया। मेरी भुजा टूट गई महाराज। *(कपोलों पर अश्रु लुढ़क पड़ते हैं।)*

जगतसिंह – *(दृढ़ता से)* नहीं नहीं। एक बार अमरचन्दजी को छुड़ाकर पुनः पदासीन करूँगा, चाहे कितनी भी कठिनता क्यों न आवे ? उनका अभाव तनिक भी सह्य नहीं। दीवानजी याद है न आपको, मैं कितना शिकार खेलता था, निरीह मूक प्राणियों पर निशाना साध उन्हें तड़पते देखकर प्रसन्न होता था। अपने पर-प्राण पीड़न कौशल की सफलता पर मुझे गर्व था। *(ठंडी साँस लेकर)* आह ! अब सोचता हूँ तो शरीर में रोमांच हो जाता है। कितनी घृणित पैशाचिक वृत्ति थी मेरी। अमरचन्दजी ने मेरे हृदय में करुणा का सागर लहरा दिया। मुझे सच्चा भूपति बनाया। मैं प्रजा-भक्षक से रक्षक बना, वे राज्य के सजग प्रहरी बन मुझे सही मार्गवलोकन कराते रहे।

झूथाराम – सत्य पर अग्रसर होना उनका एकमात्र लक्ष्य था। सर्वगुण सम्पन्नता उनको ईश्वरीय देन थी।

जगतसिंह – दीवानजी ! *(आदेशात्मक स्वर से व्यग्र हो)* अपराधी की जाँच-पड़ताल शीघ्रता से हो, ताकि अमरचन्दजी का छुड़ाया जा सके। इसके पूर्व कि फिरंगी कोई गलत कदम न उठाने पाये एवं हम भी केवल पश्चात्ताप करने हेतु बाध्य न रहें।

झूथाराम – प्रयत्न ऐसा ही कर रहे हैं महाराज ! *(सामूहिक कोलाहल सुनाई पड़ता है। दोनों चौकन्ने हो जाते हैं। शनैः शनैः ध्वनि तीव्रतर होती जाती है। क्रुद्ध भीड़ चिल्लाती है।)*

नेपथ्य से – हम राजा साहब और दीवानजी से मिलना चाहते हैं। हमारे

परमप्रिय दीवानजी को फिरंगियों को क्यों सौंप दिया? क्या अपराध था उनका?

झूथाराम – ज्ञात होता है कि अमरचन्दजी की गिरफ्तारी के रहस्य से प्रजा अवगत हो चुकी है। यह रोष उसी का है।

जगतसिंह – अमरचन्दजी इस घटना से पूर्णत: सावधान और सजग थे। इसीलिये उन्होंने एजेन्ट से सांगानेर चलने की शीघ्रता की। अच्छा होता यदि जनसमूह कुछ पहले आ जाता। पर.......

झूथाराम – तब तो एजेन्ट साथियों सहित यहीं ढेर हो जाता। उसकी क्या हस्ती थी कि विशाल जनसमूह में से दीवानजी को ले जाये। क्रुद्ध प्रजाजन सबको जीवित न छोड़ती।

नेपथ्य से – यदि राज्य दीवानजी की रक्षा करने में असमर्थ था तो हमें क्यों न आगाह किया गया। हम कारण जानना चाहते हैं।

जगतसिंह – दीवानजी ! आप ही जाइये और प्रजा को सांत्वना दीजिये। सचमुच आज उसका हृदय सम्राट उससे छीनकर कहीं दूर ले जाया गया। *(दुखित स्वर से)* दीवानजी ! प्रजा को समझाइये।

(झूथारामजी बाहर जाते हैं। नेत्रों से अविराम अश्रुपात हो रहा है। दीवानजी को दुखी देखकर विकल जन-समूह सन्नाटे में आ जाता है। शनैः शनैः दो चार प्रमुख जन आगे बढ़ते हैं।)

एक नागरिक – *(नम्रता से)* दीवानजी क्या बात हो गई ? छोटे दीवानजी को फिरंगी गिरफ्तार कर क्यों ले गये ? और वे कब लौटेंगे ?

झूथाराम – *(जोर-जोर से रो पड़ते हैं)* भाइयो ! अमरचन्दजी साहब ने स्वयं आत्म समर्पण कर दिया। क्या बताऊँ कुछ कहते नहीं बनता। समझो, हमारे राज्य पर महान् विपत्ति के काले बादल मंडरा रहे हैं। हम किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं। हमारे परम स्नेही हमारे बीच नहीं हैं। आप सबसे विनय है कि सब मिलकर उनकी मंगल कामना करें।

नागरिक – *(जन समूह से)* चलो भाई चलो ! इस जटिल समय में

हम दखल देकर जटिलता न बढ़ावें। फिरंगियों का कोई कुचक्र जान पड़ता है। *(दीवानजी से)* क्षमा करें दीवान जी ! आपको कष्ट हुआ। *(दुख भरे हृदय से सब चले जाते हैं।)*

दृश्य तृतीय

(रात्रि का समय, स्थान अमरचन्दजी की हवेली)

(अमरचन्दजी का वही पुराना बैठकखाना है। जमीन पर सुन्दर कालीन बिछा हुआ है। फतेहलालजी अत्यन्त उदास एवं व्यथित मन बैठे हैं। नागरिक, रिश्तेदारों के आने-जाने का तांता लगा है। कुछ सज्जन, नगर श्रेष्ठिगण सहानुभूति प्रदर्शन हेतु आये हैं।)

श्रेष्ठि – फतेहलाल, रंज न करो भैया ! देखो छुड़ाने का कोई न कोई मार्ग अवश्य निकलेगा।

(फतेहलाल के सजल नेत्र बरस पड़ते हैं।)

दूसरा श्रेष्ठि – *(साथियों से)* क्या किया जाय ऐसी अचानक विपत्ति की कोई कल्पना तो थी नहीं। हाँ, आज कुछ दुःख बीमारी हो तो चिकित्सा करते, सेवा सुश्रुषा की जाती, पर अब जैसे निरुपाय से हो रहे हैं।

(फतेहलाल की पीठ पर सान्त्वनात्मक हाथ फैरते हैं।)

पहला श्रेष्ठि – पिता का दुःख भुलाये नहीं भूलता। धैर्य भी किनारा कर गया। बच्चा ही तो है अभी उम्र ही क्या है।

फतेहलाल – *(भरे गले से)* चाचाजी ! अकस्मात् ही यह वज्र दुःख आ पड़ा है। भविष्य में क्या होगा ? कुछ समझ में नहीं आता।

तीसरा श्रेष्ठि – सच है, जीवन ही एक पोथी है। ज्यों-ज्यों पृष्ठ उलटते जाओ, त्यों-त्यों रहस्य खुलता जाता है।

दूसरा श्रेष्ठि – भैया ! तुम्हारे पिता के लिए तुम्हीं नहीं, वरन् समस्त जयपुर राज्य रो रहा है। उन जैसा व्यक्ति लाखों में एक ही था।

तीसरा श्रेष्ठि – और ऐसे मनुष्य सदियों में एक ही होते हैं। धन्य हैं दीवानजी।

दूसरा श्रेष्ठि – ऐसे दयालु सहृदय पर दुख कातर व्यक्ति मैंने अपने जीवन में दूसरा नहीं देखा भाई ! मेरे काले केश श्वेत हो गये।

पहला श्रेष्ठि – सैकड़ों रुपया दान देना उनका नित्यप्रति का व्यवसाय था। उसमें उन्होंने कभी अन्तर नहीं आने दिया।

चौथा श्रेष्ठि – इतना दान देते हुए लेने वाले की मान-प्रतिष्ठा पर आंच नहीं आने दी।

तीसरा श्रेष्ठि – राधाबाई का कौन बेटा था ? उस वृद्धा की कैसी सेवा-सुश्रुषा की। मल-मूत्र तक उठाया। ग्लानि उन्हें छू भी नहीं पाई थी।

पहला श्रेष्ठि – फतेहलाल ! उठो बेटा। सो जाओ, दिनभर हो गया तुम्हें इसीप्रकार बैठे-बैठे। तनिक विश्राम कर लो। धीरज धरो, भगवान करे सब कुशल मंगल हो।

दूसरा श्रेष्ठि – माँ को धीरज बंधाना बेटा। तुम खुद समझदार हो। हम लोग चलें, कल फिर आयेंगे।

(सबका प्रस्थान, जाते-जाते....................)

पहला श्रेष्ठि – पिता के गुणों का प्रतिबिम्ब है फतेहलाल।

(एक ओर से सबका जाना और दूसरी ओर से श्रेष्ठि चमनलालजी का आना। फतेहलाल खड़े होते हैं, इतने में ही चमनलाल आकर फतेहलाल के पैरों पर सिर रख कर रोने लगते हैं।)

फतेहलाल – *(आश्चर्य से)* अरे चमनलालजी ! आप रो रहे हैं। (हाथ पकड़कर उठाने की चेष्टा करते हुये) क्या बात है ? सुनिये हमने आपके साथ कोई उपकार नहीं किया। पिताजी की आज्ञानुसार मैंने लड्डू भिजवाये थे। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता। आपके पुण्योदय से यदि कुछ चमत्कार हुआ हो तो आप जानें।

चमनलाल – *(दृढ़ता से पैर पकड़े हुये परिताप भरे स्वर से)* भैया फतेहलाल, मैंने घृणित अपराध किया है। मेरे ही कारण दीवानजी का जीवन सघन संकट में पड़ गया है।

फतेहलाल – आपका मतलब समझ नहीं रहा हूँ चमनलालजी। *(उठाते हुये)* उठिये तो सही।

चमनलाल – स्मिथ का खून मैंने किया है भैया, मैं दोषी हूँ, हत्यारा हूँ। राजभक्ति के पागलपन ने मेरे विवेक की आँखें फोड़ दीं। मैं अंधा हो गया। भैया उन्हें छुड़ा लाओ। वह स्थान मुझ पापी का है। हाय ! मुझ से महान् अनर्थ हो गया।

(फतेहलाल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चमनलाल की तरफ एकटक देखते रह जाते हैं।)

चमनलाल – *(खड़े होकर)* देख क्या रहे हो फतेहलाल ! शीघ्रता करो भाई। क्षण-क्षण मूल्यवान है। कहीं ऐसा न हो कि कोई और भयंकर अनर्थ घट जाये। और मैं आजीवन तिल-तिल जलकर भी कुछ न कर पाऊँ।

फतेहलाल – *(सावधान होकर)* चलिये चमनलालजी। ताऊजी के पास चला जाये। उनकी सम्मति यथेष्ट रहेगी।

दृश्य चतुर्थ

स्थान – झूथारामजी की हवेली।

(झूथारामजी अभी-अभी राजा जगतसिंहजी के पास से आये हैं। दोनों में गुप्त-मंत्रणा अवश्य होती रही है पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे। आज की वार्ता कल पर छोड़ वे घर आये। मन खिन्न व उद्विग्न जान पड़ता है। पगड़ी उतारकर वे खूंटी पर टाँग रहे थे कि चमनलाल के साथ फतेहलाल पहुँचते हैं।)

झूथाराम – *(देखते ही)* अरे ! आप लोग इस समय यहाँ कैसे ? बैठो-बैठो। *(तीनों तख्त पर बैठ जाते हैं। चमनलाल नतमस्तक है।)*

फतेहलाल – ताऊजी ! आपका कहना है कि कप्तान स्मिथ का खून मैंने ही किया है।

झूथाराम – *(मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है)* सच, तुमने

किया है ? निश्चय ही अमर भैया छूट जायेंगे। *(चमनलाल की पीठ ठोक कर)* तुम धीर हो, साहसी हो चमनलालजी। तुम्हारी राजभक्ति सराहनीय है। तुमने अपराध स्वीकार कर दृढ़ता का परिचय दिया है। प्रजा के हृदय सम्राट को बचाकर तुम महान् उपकार कर रहे हो। अत: प्रजा युग-युग तक तुम्हारे प्रति चिर अनुग्रहीत रहेगी, राज्य की ओर से कुटुम्ब की रक्षार्थ जागीर बांध दी जाय...............।

चमनलाल – *(बात काटकर अनुताप भरे विगलित स्वर से)* जागीर नहीं चाहिये दीवानजी। मुझे शीघ्र ही सांगानेर ले चलिये, विलम्ब घातक सिद्ध हो सकता है।

झूथाराम – विलम्ब कुछ भी नहीं है। हम अभी रातों-रात चलकर प्रात: सांगानेर पहुँच जायेंगे। बहली निकालवा लूँ।

फतेहलाल – बहली बाहर प्रस्तुत है ताऊजी, हम उसी में आये हैं।

झूथाराम – तब फिर चलो। मार्ग में राजा साहब को सूचित करते हुये चले चलेंगे। *(पगड़ी पहन लेते हैं।)*

दृश्य पंचम

(सांगानेर, अंग्रजों की छावनी)

समय – प्रात:काल प्रथम पहर के पश्चात्

(कमरा अंग्रजी ढंग से सजा हुआ है। द्वार पर दरवान खड़ा है। उसके कंधे पर बन्दूक है। उपर्युक्त तीनों व्यक्ति वहाँ आते हैं।)

झूथाराम – *(दरवान से)* एजेन्ट साहब से जाकर कहो कि जयपुर से बड़े दीवान आपसे मिलना चाहते हैं।

दरवान – जी, *(अन्दर जाता है पुन: आकर)* उन्हें अवकाश नहीं है।

झूथाराम – *(व्यंग्य से)* अवकाश नहीं है। क्यों ? क्या शतरंज की बाजी पर मात खा गये जो मिलने से कतरा रहे हैं। (दृढ़ एवं गम्भीर हो) दरवान!

तुम उन्हें सूचित करो कि जयपुर राज्य ने अपनी क्षमता से कहीं अधिक मूल्य दिया है।

दरवान – जी, *(पुनः अन्दर जाता है और बाहर आकर)* चलिये, आपको याद किया है।

(तीनों के मुख अपनी सफलता पर खिल उठते हैं।)

एजेन्ट और उसके पूर्व परिचित अन्य दो साथी बैठे हैं। इन तीनों के जाते ही एजेन्ट *(तपाक से उठ कर झूथारामजी से हाथ मिलाते हुये)* हलो-हलो डीवान साहब ! तशरीफ रखिये। *(सब कुर्सियों पर बैठ जाते हैं)* यहाँ किस कारण से आया है आप लोग ?

झूथाराम – *(नम्रता से)* हम अमरचन्दजी से भेंट करना चाहते हैं।

एजेन्ट – नेई-नेई, ये कैसे हो सकटा हय? खूनी मुजरिम को अम कोई कन्वीनियन्स (सुविधा) नेई डेना सकटा।

झूथाराम – परन्तु साहब, मैं आपकी सरकार के हित की ही कह रहा हूँ। आप मेरी बात न मानकर घाटे का सौदा कर रहे हैं।

एजेन्ट – घाटे का सौडा। आपका मटलब अमारी समझ में नेई आया।

झूथाराम – बात सरल है साहब ! अमरचन्द जो मुजरिम नहीं हैं, यथार्थतः मुजरिम दूसरा है। आपने उनको गिरफ्तार कर गलत कदम उठाया है।

एजेन्ट – तुम सच बोलता हय।

झूथाराम – और क्या झूठ ?

एजेन्ट – टो बटाओ वह असली मुजरिम कहाँ हय। अम गिरफ्तार कर कड़ी सजा देगा। अम तो पहिले बोलटा था कि अमरचन्द हत्या नेई कर सकटा।

झूथाराम – मुजरिम हाथ में है, परन्तु दीवानजी से मिले बिना हम बतलाने में असमर्थ हैं।

एजेन्ट – ऐसा क्यों ? अम आपसे वायडा करटा हय कि अमरचन्दजी को अब्बी छोड़ देगा।

झूथाराम – देखिये साहब ! अमरचन्दजी स्वेच्छा से गिरफ्तार हुये हैं। यदि वे अपना स्थान असली अपराधी को देने की स्वीकारता दे दें तो अंग्रेज सरकार जयपुर पर पुनः अपना जाल बिछा सकती है। *(किंचित् रोषपूर्वक)* आप चाहें तो भेंट करने की अनुमति दें, वरना हम अभी जयपुर लौट जायेंगे।

एजेन्ट – *(साथियों से)* टैल मी ओवर ओपीनियन अबाउट दिस मेटर?

पहला साथी – इट इज बैटर टु गिव देम।

दूसरा साथी – देन वी विल गैट दी सक्सेज इन अवर वर्क, अवर गवर्नमेन्ट विल गवर्न ऑन जयपुर स्टेट।

एजेन्ट – अवर फ्लेग विल ह्वाइस्ट ऑन जयपुर स्टेट। एन्ड अवर गवर्नमेन्ट विल गिव अस ए स्पेशल प्राइज एन्ड ऑनर।

दोनों साथी – ओ यस ! यू आर क्वाइट राइट।

एजेन्ट – अच्छा डीवान साहब ! अम टुमारा बाट की कडर करता हय। टुम उटनी दूर से आया और मुलाकात करना माँगटा हय टो अम टुमको हाफ घंटा बाट करने का डेगा। टुमारा काम अमरचन्द को राजी करने का हय।

झूथाराम – प्रयत्न करूँगा। *(प्रस्थान)*

दृश्य षष्टम

स्थान – जेल की कोठरी।

(कोठरी में बाहर से ताला लगा है। पहरेदार कंधे पर बन्दूक रखे पहरा दे रहा है। भीतर पालथी मारे अपनी अभ्यस्त ध्यान मुद्रा में आँखें मूंदे हुए अमरचंदजी बैठे हैं। वे सदा ही आत्मध्यान में तन्मय हो जाते हैं। दीवान झूथारामजी और फतेहलाल, चमनलाल के साथ आते हैं। इन्हें देखते ही पहरेदार ताला खोल देता है। तीनों व्यक्ति अन्दर प्रविष्ट होते हैं। सबके नयन

सजल हैं। सहसा चमनलाल उनके पैर पकड़ कर साष्टांग औंधे मुँह पड़ रहता है। अमरचंदजी आँखें खोलते हैं। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा। वे उसे उठाते हैं, पर चमनलालजी टस से मस नहीं होते। अमरचंदजी प्रश्नवाचक दृष्टि से इन दोनों की ओर देखते रह जाते हैं। झूथारामजी व फतेहलाल पास ही जमीन पर बैठ जाते हैं।)

झूथाराम – *(भर्राये गले से)* चमनलाल को मत उठाओ छोटा भाई। उनके आँसुओं को वह जाने दो। ये परिताप के आँसु हैं। इनके बह जाने में ही सबका कल्याण है।

अमरचंद – क्या बात है बन्धु, क्या हो गया इन्हें ? आप भी उदास, फतेहलाल भी। आखिर क्या हो गया आप लोगों को ? जीवन संघर्षमय। सुख-दुख, जीवन-मरण नियति के निश्चित काम हैं। इनमें हर्ष विषाद कैसा ?

फतेहलाल – पिताजी, *(कहते हुए आँखें बरस पड़ती हैं)*...

अमरचंद – *(कंधे से लगाकर)* पागल हुये हो वत्स, यहाँ कौन किसका है ? ये सब शारीरिक सम्बन्ध हैं। संयोग-वियोग हुआ ही करते हैं। धर्मशाला में चन्द समय ठहरने वाले पथिकों की भाँति प्रत्येक परिवार के सदस्य भी मिलते-बिछुड़ते रहते हैं।

झूथाराम – पर भैया, तुम जैसी आत्म-भावना सबने थोड़े की है। जो ज्ञान की किरण तुम्हारे हृदय में प्रज्वलित है, उसका यहाँ प्रादुर्भाव नहीं। तुमने वासनाओं का दमन करना सीखा है। नित्य संयम की अग्नि में तपकर तुम खरे सुवर्ण हो गये हो भैया।

अमरचंद – इतना ऊँचा न उठाओ बड़े भाई, मुझ रागी में विराग की रेखा प्रस्फुटित भी नहीं हो पाई।

झूथाराम – नहीं बंधु, आसक्ति को हटा विरक्ति को तुमने अपनी सहचरी बना लिया है। विरागता की ओर तुम्हारे लिए त्याग का पथ प्रशस्त है। हमारी तुम्हारी बराबरी कैसी ? कहाँ हीरा, कहाँ काँच ? दोनों में संतुलन असम्भव है।

(चमनलाल बीच-बीच में पड़े-पड़े अपना सिर बड़ी तेजी से हिलाते हैं। ऐसा लगता है मानों वे पश्चाताप की अग्नि में जलकर वहीं भस्म हो जायेंगे। पर यह संभव कहाँ? सिसकियों के बीच कभी-कभी दीवानजी शब्द सुनाई पड़ जाता है।)

अमरचंद – कुछ कहिये तो चमनलालजी, क्या बात है?

झूथाराम – इन्होंने राजभक्ति के उद्वेग में आकर कप्तान स्मिथ की हत्या की है।

अमरचंद – अच्छा, निःसन्देह तुम्हारा राज्यप्रेम श्लाघनीय है।

झूथाराम – अब आप अपना स्थान चमनलाल को देकर हम सबको अनुग्रहीत करें।

अमरचंद – *(सिर हिलाते हुये गम्भीरता से)* यह सर्वथा असम्भव है।

फतेहलाल – *(संयत हो)* क्यों पिताजी, इसमें कौन-सी बाधा है? ये स्वयं अपना अपराध स्वीकार कर रहे हैं।

अमरचंद – पुत्र, तुम अभी राजनीति क्या समझो?

झूथाराम – हाँ भाई यही बात है। चमनलाल ने बिना किसी दबाव के आत्मसमर्पण किया है।

अमरचंद – भैया, आप जैसे कुशल राजनीतिज्ञ के वचन मुझे नितांत आश्चर्य में डाल रहे हैं। कदाचित् मोहवश ही आप ऐसा कह सके हैं।

झूथाराम – पर यह बात उचित है क्या कि निरपराध फाँसी पर झूले?

अमरचंद – सुनिये बड़े भाई, जब मैंने एजेंट के समक्ष अपराध की स्वीकारोक्ति की थी, तब मेरे मन में किसी प्रकार की व्यथा नहीं थी। किसी के प्रति द्वेष या घृणा नहीं थी। गजदंत बाहर निकलने के पश्चात् पुन मुँह में प्रविष्ट नहीं होते। बंधु, जो हो चुका सो हो चुका। अब कोई विकल्प शेष नहीं।

झूथाराम – परन्तु न्याय यह नहीं कहता।

अमरचंद – बंधु, संसार न्याय की भित्ति पर आधारित नहीं रह सकता, उसे नीति का आश्रय लेना ही होगा।

झूथाराम – ठीक है, पर आपने तनिक यह भी विचारने का प्रयास किया कि आपका अभाव राज्य की प्रजा पर क्या प्रभाव डालेगा ? आपके सहारे अनेकों प्राणी जीवन पाते थे। दीनबंधु के बिना उन सबकी सुधि कौन रखेगा? *(गहरा उच्छ्वास ले)* घोर वज्रपात हो जायगा। *(अत्यन्त दीनता से)* भैया, अपने लिए नहीं, तो उनके लिए, अपनी प्यारी प्रजा के लिए तुम्हें जीवित रहना होगा।

अमरचंद – भैया, ममता आपको बार-बार भुलावा दे रही है। आप भूल गये कि प्रत्येक प्राणी अपने जीवन-मरण, सुख-दुख का स्वयं स्वामी है। मैं रक्षा करने वाला कौन? यह नितांत भ्रम है।

चमनलाल – *(रुदन करते हुये उठकर)* दीवानजी, मैं नीच पापी हूँ। मेरे ही कारण राज्य का सूर्य अस्त हो जायगा। यह मैं नहीं सह सकता। मैं जीवित रह कर धरती का भार ही बना रहूँगा।....आपने जीवन भर दान दिया है। अन्तिम बार मुझ भिखारी की झोली भर दीजिये दीवानजी *(कुर्ता फैलाकर)* भिक्षा माँग रहा हूँ।

अमरचंद – *(कुर्ता नीचे करते हुये)* चमनलालजी, ऐसी बातें आपके मुँह से अच्छी नहीं लगती। भला क्या चाहते हैं आप?

चमनलाल – आप जिस पर बैठे हैं वह स्थान चाहिए । इसकी योग्यता आप में नहीं, मुझमें है। आपकी यह अनधिकार चेष्टा है। ...मैं बैठूँगा यहाँ, आप जाइये।

अमरचंद – पर भाई, ये मेरे और तुम्हारे हाथ की बात नहीं। अब मेरा जीवन फिरंगियों के हाथ में है।

फतेहलाल – एजेन्ट ने वचन दिया है पिताजी, कि असली खूनी को सौंप देने पर आपको तुरन्त छोड़ देंगे।

अमरचंद – बेटा, ये उनकी चालें हैं। झूठ बोलने के अतिरिक्त उन

लोगों ने कुछ भी नहीं सीखा। घृणित अत्याचार, बेईमानी, विश्वासघात व कायरता ही उनके राज्य की आधार शिला है। साम्राज्य-लिप्सा ने उन्हें विवेक-हीन अंधा बना दिया है। यदि उनकी चाल में फंस गए तो दोनों तरफ ये पिट जायेंगे। मेरे साथ चमनलालजी को फाँसी लगेगी ही और राज्य भी दुश्मनों के हाथ में चला जायगा।

झूथाराम – पर भैया, आप जैसे नर-रत्न को खोकर राज्य की रक्षा करना तुच्छता है।

अमरचंद – *(दृढता से)* नहीं, मनुष्य तो संसार में आते-जाते बने ही रहते हैं। एक के पीछे अनेकों प्राणियों का अकल्याण न करो। निरंकुश अत्याचारी शासन से प्रजा की रक्षा करनी होगी। महामंत्री ! ममता के रेशमी बंधन से मुक्त होकर कर्त्तव्य की ओर ध्यान दें। मेरी विनम्र विनय है।... बड़े भाई, आप तो राजनीति के मंजे हुए खिलाड़ी हैं। आप ही बताइये कि क्या मेरे बच जाने से जयपुर राज्य की रक्षा हो सकेगी? फिरंगियों के दांत इस राज्य पर इतने गहरे गड़े हैं कि उन्हें उखाड़ने के लिए गुरुतर हथौड़े की आवश्यकता है। स्मिथ छावनी के माने हुये पुराने अफसर थे। शतरंज पर आड़े सीधे यही मोहरा दौड़ रहा था। राज्य का दुर्भाग्य कि हम इसी मोहरे को पीट गए। अब पछताने से कुछ हाथ आयेगा नहीं। अब हमारे सामने दो ही रास्ते हैं। या तो मेरे लोभ में बिसात शत्रु को सौंप दें या वजीर पिटवाकर हारी बाजी जीत लें। पैदल को आगे किया तो वह भी पिट जायगा और बिसात भी हमारी मात में उलट जायगी।

चमनलाल – दीवानजी, आप जैसे महान् पवित्रात्मा मेरे ही कारण शूली पर चढ़ेंगे। *(जोर से रो पड़ते हैं।)*

अमरचंद – चमनलालजी, आप केवल निमित्त मात्र हैं। आप अपने को प्रकट कर अंतकरण शुद्ध कर चुके हैं। सच्चे हृदय से किया हुआ पश्चाताप अनेकों पाप भस्म कर देता है। सब जीवों पर दया-भाव रख आनन्द से जीवन-यापन करिये। आपकी गृहस्थी अभी कच्ची है। भवितव्यता दुर्निवार है। इसमें 'क्यों' और 'कैसे' का प्रश्न ही नहीं उठता।

फतेहलाल – पिताजी, ..*(बोल नहीं पाते)*

झूथाराम – *(गला भर आया)* फिर भी..

अमरचंद – *(बात काटकर)* बड़े भाई और फतेहलाल आप लोग मुझे मोह में खींचकर पथभ्रष्ट न करें। कर्त्तव्य मुझे प्रेरित कर रहा है। अब मैं संसार से निर्वृत्ति रूप होने का सतत् प्रयास करूँगा। यह जीवन की साधना कठोर परीक्षा है। बन सके तो यही कामना करना कि मैं सफल हो जाऊँ। चमनलालजी को आत्मग्लानि के अनुभव का अवसर न आने दें एवं इन्हें राज्य की ओर से जागीर बंधवा दें, ताकि इनकी जीविका का सुन्दर प्रबन्ध हो जाये। ऐसे निश्छल विशुद्ध अंतकरण वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं।

झूथाराम – *(अविरल अश्रुधारा पोंछते हुये)* ऐसा ही हो जाएगा। कुछ और अभिलाषा हो तो कहो बंधु, हम लोग पूर्ण कर अपना अहोभाग्य समझेंगे।

अमरचंद – इतना और ध्यान रखिएगा कि मैं अपने जीवन की ओर से पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। प्रीवी कौंसिल तक राज्य का धन व्यर्थ न बहाना। मौहरा गया, चाहे जितना प्रिय हो। ऐसा समझ कर सामान्य प्रतिष्ठा भर के लिए खर्च करना, जिसमें लोकापवाद न हो।

झूथाराम – सबके लिए सब कुछ कहा, परन्तु अपने लिए कुछ भी नहीं ?

अमरचंद – कहूँ क्या, ...हाँ, एक आकांक्षा और नितांत व्यक्तिगत और स्वार्थपूर्ण। जानता हूँ कुछ हो नहीं सकता। अन्तिम गति के क्षणों के भविष्य में मन में कुछ विकल्प शेष है। एजेन्ट चांडाल के ही हाथों फाँसी लगावेगा, किन्तु वह भी क्या करे? स्वामी की आज्ञा का पालन उस बेचारे का धर्म है। *(फतेहलाल मूर्छित हो जाते हैं। चमनलाल बालकों की नाईं फूट-फूट कर रो पड़ते हैं। झूथारामजी भी आँसू बहाते हुये फतेहलाल को चेत में लाने के लिए कुर्ते से ही व्यजन करते हैं। चमनलाल भी सहयोग देते हैं। अमरचंद पुत्र के माथे पर बार-बार हाथ फेरते हैं।)*

झूथाराम – बेचारा फतेहलाल अभी बच्चा ही है। इतना बड़ा दुख सहन करना कठिन होगा।

अमरचंद – बंधुवर, फतेहलाल के मार्गप्रदर्शक आप हैं। उसे कष्टसहिष्णु बना सत्कार्यों की ओर प्रेरित करें।

झूथाराम – वह आपका प्रतिबिंब है भैया, आपने उसके संस्कार इतने सुसंस्कृत कर डाले हैं कि वह अपने योग्य वातावरण स्वयं निर्मित कर लेगा। कुशाग्रबुद्धि तथा कुशल है वह।

अमरचंद – वत्स, उठो *(फतेहलाल चेत में आते हैं)* निर्भय समदृष्टि बनने का नित्य अभ्यास करना। स्व-पर कल्याण करने में ही जीवन की सार्थकता है।.. बड़े भाई, समय हो चुका। चमनलालजी आप लोग जायें। नहीं तो आपको निर्दयता पूर्वक हटा दिया जायेगा।

एजेन्ट का साथी – मिलने का टाइम खत्म हो गया। बाहर निकलो।

अमरचंद – *(हाथ जोड़ कर)* उत्तम क्षमा।

(तीनों व्यक्ति प्रत्युत्तर में हाथ जोड़ते हुए सजल नयन बाहर निकलते हैं। बार-बार मुड़-मुड़ कर अमरचंद को देखते जाते हैं। पैर ऐसे उठ रहे हैं मानों मन-मन भर के पत्थर बाँध दिये हों। धीरे-धीरे ओझल हो जाते हैं। पहरेदार तुरन्त ताला लगा देता है। अमरचंदजी ध्यानस्थ हो जाते हैं।)

(दो नागरिक मार्ग में वार्तालाप कर रहे हैं।)

१. नागरिक – जब से सुना है कि छोटे दीवानजी को कल फाँसी होगी, चैन नहीं।

२. नागरिक – हाँ भाई ! उस बुरी घड़ी की सुधि आते ही कलेजा मुँह को आता है। कल जयपुर राज्य के दुर्भाग्य का बड़ा क्रूर दिवस होगा, जब कि बिना तिलक का राजा संसार से विदा ले लेगा।

१. नागरिक – यह सोचते ही ऐसा लगता है मानों संसार का रक्षक कहीं सौ गया है अथवा कोई है ही नहीं। ऐसे धर्मात्माओं पर भी पूर्व

पापोदयानुसार कैसा कष्ट आता है? और वे भी उसे पापोदय का कार्य जानकर सहजता से भोग लेते हैं।

२. नागरिक – हाँ देखो न, कौन जानता था कि कभी वे शूली पर भी चढ़ेंगे। हाय, इस दुनिया में जो न हो सो सब थोड़ा है।

१. नागरिक – इसलिए तो कहते हैं भैया कि सत्कर्म करो। न जाने कब प्राण निकल जायें। फिर हाथ कुछ नहीं आता।

२. नागरिक – और क्या, मरने पर भले-बुरे का लेखा-जोखा होता है। यही साथ जाता है। इस शरीर की इतनी-इतनी सेवा सुश्रूषा करो, पर अन्त में यह छलिया कभी साथ नहीं देता।

१. नागरिक – दीवानजी कितने निर्ममत्व हैं कि देश-रक्षा के लिए अपनी पत्नी पुत्रादि से ममता त्याग दी और शरीर का भी मोह छोड़ आत्मसमर्पण कर दिया।

२. नागरिक – खून करे कोई, फाँसी लगे किसी को। दीवानजी जैसे अहिंसक कहीं हत्या कर सकते हैं ? उन्होंने तो पराया दोष अपने सिर ले लिया है।

१. नागरिक – दीवानजी जैन हैं। भैया ! जैन बहुत उत्कृष्ट होते हैं। सुना है जैनियों में मरना भी एक कला है।

२. नागरिक – *(आश्चर्य से)* हैं, मरना और कला ? ये कैसी कला है भैया ? तनिक हमें भी बताओ।

१. नागरिक – भाई ! कहते हैं कि जैनयोगी ऐच्छिक मरण कर सकते हैं। वे मृत्यु से घबराते नहीं वरन् उसका आह्वान करते हैं। चाहे तो गृहस्थ भी इसी प्रकार मरण कर सकता है। यह अपने अन्तिम समय में वस्त्राभूषण स्त्री-पुत्र आदि यहाँ तक कि तन से भी ममता त्याग देते हैं। वे क्रमशः आहार, जल, औषधि का त्याग कर सानन्द मृत्यु का वरण करते हैं।

२. नागरिक – क्या उन्हें मृत्यु से डर नहीं लगता ?

१. नागरिक – भला डर लगता तो उपयुक्त क्रिया ही क्यों करते? उनका

सिद्धान्त है मृत्यु नहीं आई तो बुलाना उपयुक्त नहीं और आ ही गई तो उसका प्रतिकार करना उचित नहीं। इसे वे मरणोत्सव की संज्ञा देते हैं।

२. नागरिक – है यही सत्य। जब मरना ही है तो हंसकर मरना श्रेष्ठ है। रोने चीखने से मौत लौटने वाली नहीं, पर यह सब बहुत दु:साध्य है। अपने जीवन में तो कथनी व करनी में जमीन आसमान का अन्तर है ।

१. नागरिक – धैर्यवान पुरुष ही इस मृत्यु के अधिकारी हैं। धैर्य के बिना शान्ति कहाँ? वे अपना मरण सुधारने के लिए जीवन भर विरक्ति का अभ्यास करते हैं। तब कहीं मन के अनुकूल निवृर्त्तिमय प्रवृत्ति होती है।

२. नागरिक – दीवानजी तो सचमुच विरक्त हैं। जीवन भर लाखों अशर्फियों का गुप्त दान दिया। सरल प्रकृति, उदार, पुण्यवान्, करुणा के तो साक्षात् सिन्धु ही हैं।

१. नागरिक – कल प्रात:काल उन्हें फाँसी होगी। जयपुर की जनता उनके अन्तिम दर्शन करने विशाल संख्या में पहुँचेगी।

२. नागरिक – क्यों नहीं, जाना ही चाहिए। शहर में जहाँ देखो, वहाँ यही चर्चा है। अब ऐसा श्रेष्ठ पुरुष जीवन में पुन: मिलना दु:साध्य नहीं अपितु असाध्य भी है। (कुछ सोचकर) क्यों भाई ! जनसमूह का जाना व्यर्थ तो न होगा ? ये दुष्ट फिरंगी दर्शन करने भी देंगे ?

१. नागरिक – *(सिर हिलाते हुए)* हाँ ! यह बात अवश्य विचारणीय है। मेरे ध्यान से तो हम लोगों को परोक्ष में ही श्रद्धांजलि भेंट करनी होगी।

२. नागरिक – ये बेईमान फिरंगी देशवासियों में पारस्परिक विद्वेष की आग भड़काते रहते हैं।

१. नागरिक – अरे भैया ! इन नीचों ने संस्कृति का सर्वनाश ही कर डाला। विश्वास नाम की कोई चीज ही नहीं रह गई है। देश, समाज, धर्म सभी को इन फिरंगियों ने छिन्न-भिन्न कर डाला। न जाने अपने देश से इनका काला मुँह कब होगा ?

२. नागरिक – वे दिनों-दिन पैर फैला रहे हैं। साम्राज्य विस्तार की लालसा ने उन्हें अधिक पतित बना दिया है। इसकी पूर्ति में वे अति घृणित

काले कारनामों से नहीं चूकते।

१. नागरिक – दीवानजी को फाँसी देना भी इसी का नमूना है। करें भी क्या बेचारे ? वीरता उनमें है नहीं। सिंह की तरह आक्रमण करना क्या जानें ?

२. नागरिक – क्षमता हो तब न , कायर... *(दांत पीसता है)* क्षमा करना भाई, एक बात कहूँ। गलती अपनी है। वे हम लोगों को आपस में लड़ाकर कभी इस पक्ष, कभी दूसरे पक्ष का समर्थन कर मनचाहा लूटते हैं और राज्य वृद्धि करते हैं।

१. नागरिक – भारतवासियों की थोड़ी ना-समझी से ही वे भारत को बहुत बड़ा नुकसान पहुँचा रहे हैं। तमाशा यह कि उनकी फौज की भी हानि नहीं होती। वैतनिक भारतीय सेनाओं को ढाल बनाकर लड़ते हैं। लड़ने में भारतीय आगे, विजय मिली तो सेहरा फिरंगियों के सिर। हार हुई तो जान बचाकर भागने में पहला नम्बर।

२. नागरिक – अपने ही भाईयों के कारण ही अब पग-पग पर लज्जा और अपमान का सामना करना पड़ रहा है। अन्याय और अत्याचार के जहरीले प्याले पर प्याले हम चुपचाप पिए जा रहे हैं, तब भी नहीं जागते। 'अपनी बिल्ली, अपने से ही म्यांयु।

१. नागरिक – सुनने में आया है कि राजा साहब की अर्जी पर वे इतनी सुविधा देने को तैयार हुए हैं कि फांसी के समय बड़े दीवानजी व पुत्र फतेहलाल सींखचों के पार खड़े रह सकते हैं।

२. नागरिक – कब जाओगे सांगानेर ?

१. नागरिक – एक पहर रात्रि रहे बैलगाड़ी से चल पड़ेंगे।

२. नागरिक – मुझे भी साथ ले लेना। अच्छा नमस्ते। *(प्रस्थान)*

दृश्य अष्टम

फाँसीघर

(फाँसीघर के अन्दर बैठा चांडाल मोम का लेप कर रस्सी चिकनी कर रहा है। सींखचों के पार झूथारामजी व फतेहलाल उदास मन खड़े हैं।

अमरचंदजी को फाँसी लगने की कल्पना से वे बार-बार सिहर उठते हैं। उनके आर्द्र नयन अश्रुओं से परिप्लावित हैं। कभी-कभी कपोलों पर अश्रुजल ढुलक आता है मानो धैर्य ही किनारे तोड़कर बह रहा हो। दीवानजी के अन्तिम क्षणों की कल्पना मात्र से उनका हृदय अत्यन्त दुःखी हो रहा है।)

थोड़ी देर पश्चात् वहाँ जेलर, डाक्टर, सिपाही, जमादार, पोलीटिकल एज़ेन्ट व उसके अन्य साथी आते हैं।

एजेन्ट – *(गर्व के साथ)* टुम लोग सोचटा होगा के फांसी में इटना डेर क्यों हो रहा हय ? उसका कारण हय- कैडी ने अपना आखिरी ख्वाहिश बटाया हय। वो एक घंटा ध्यान करना माँगता हय। अमारी रहमडिल कम्पनी सरकार उसका ख्वाहिश पूरा करेगा। कैडी को एक घंटे की जिंदगी और डे डिया हय। ये हय 'जस्टिस विद काइन्डनेस। *(यह सुनाकर सब चले जाते हैं।)*

(झूथारामजी व फतेहलाल एक-दूसरे की ओर आश्चर्य-चकित हो देखते हैं।)

फतेहलाल – क्या पिताजी मृत्यु से डर गये ?

झूथाराम – *(दृढता से)* नहीं, ऐसा नहीं हो सकता असम्भव है। यह बेईमान कोरी शेखी बघार रहा है।

फतेहलाल – आप ठीक कह रहे हैं, उनके जीवन-चरित्र तथा विरक्ति को दृष्टिगत रखते हुये यह सम्भव प्रतीत नहीं होता ताऊजी।

झूथाराम – और जब कि यह जानते हैं कि मौत अनिवार्य है, टलने वाली नहीं। यह अवश्य है कि समय कुछ अधिक हो गया है।

फतेहलाल – हाँ, उसके कथनानुसार एक घंटा भी समाप्त हो रहा है। *(हाथ जोड़कर)* हे भगवन्, अब लाज तुम्हारे हाथ है। निवाह देना। *(दोनों कपोलों पर दो बूँदें ढुलक आती हैं।)*

झूथाराम – बेटा, जिस संयम ने तुम्हारे पिताजी को सदा सन्मार्ग पर चलाया है, वही अब भी सहयोगी रहेगा। सरल स्वभावी दयालु की मृत्यु अमरता का संदेश दे जाती है।

(डाक्टर का हाँफते हुये आना, दूसरी ओर से एजेन्ट आदि उपर्युक्त व्यक्ति आते हैं।)

डाक्टर – *(एजेन्ट से)* सर, आप उस कैदी को फाँसी नहीं दे सकते। कानून के खिलाफ है।

एजेन्ट – *(क्रोधावेश से)* डैमफूल, क्या बकवास करटा हय। काला आडमी...

डाक्टर – *(बीच ही में)* मैं ठीक कह रहा हूँ सर, वह देखिये... *(जमादार का अमरचन्दजी को लाते हैं ध्यानस्थ होने के साथ ही उनका आत्मा महाप्रयाण कर जाता है। पद्मासन लगाये उनका शव ऐसा प्रतीत होता है मानों समाधि में तल्लीन हो। जमादार इसी अवस्था में उठाकर लाते हैं। सब व्यक्ति घोर विस्मय से आँखें फाड़-फाड़कर देखते रह जाते हैं।)*

डाक्टर – आप मुर्दे को फाँसी पर नहीं चढ़ा सकते।

एजेन्ट – शट अप, क्या वकटा हय, *(डाक्टर को जोर से थप्पड़ मार देता है, डाक्टर अपने स्वाभिमान पर करारी चोट सहन कर दासता के समक्ष सिर झुका गाल सहलाता हुआ रह जाता है)* जल्लाड, चढ़ाओ इसको फाँसी पर, *(जल्लाद आगे बढ़ता है पर उसके हाथ-पैर काँपने के कारण वह ठिठक जाता है)*

फतेहलाल – *(विषाद मिश्रित अत्यन्त प्रसन्नता से)* समाधिमरण।

झूथाराम – *(आँसू पोंछते हुये)* हाँ बेटा, समाधिमरण। चलो चलें। यह दुष्ट एजेन्ट शव के साथ दुर्व्यवहार करने से न चूकेगा। अब हम देख कर क्या करेंगे ? उस नीच को मन का गुवार निकाल लेने दो। *(सजल नयन दोनों चल देते हैं।)*

फतेहलाल – *(मार्ग में)* पिताजी की मृत्यु से जो दुःख हो रहा है, उससे कहीं अधिक आनंद की तरंगें भी उठती हैं। उनकी आकांक्षा पूर्ण हुई। चाण्डाल के अपवित्र हाथों के स्पर्श से पूर्व ही उनकी आत्मा स्वतः तन से पृथक् हो गई। *(विह्वल हो)* ताऊजी, उन्होंने अपनी भावनाओं को कितना

सँवारा होगा ? महान् मनोबल संचित करने हेतु आत्मा ने अथक् प्रयास किया होगा ?

झूथाराम – *(स्नेह से पीठ थपथपाते हुये)* बड़ा पागल है रे, अरे जीवन भर जिसने अपनी इच्छाओं पर विजय पाई हो, जो अहर्निश परिग्रह त्यागकर अपने सहज स्वभाविक भावों को प्रश्रय देता रहा, क्या उस श्रेष्ठ पुरुष की अन्तिम अभिलाषा पूरी न होगी ? फतेहलाल ! एक बात अवश्य है बेटा, अमरचंदजी ने ध्यानरूपी अग्नि में रागद्वेष रूपी भावों को झोंका होगा। चिरसंचित शुभ परिणामों के फलस्वरूप ही आयुकर्म के निषेक इन पापियों के हाथ उन तक पहुँचने के पूर्व ही पूर्ण हो गये। और उन्होंने पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए अपने आत्मस्वभाव का विचार व भेदज्ञान की भावना भाते हुए स्वावलम्बन पूर्वक देह का त्याग किया है।

फतेहलाल – स्वावलम्बन ही उनके जीवन का आधार बना।

झूथाराम – (उल्लसित हो) भाग्यवान् थे वे नर और विलक्षण है उनकी आहुति, (दोनों के नयन पलकों में से कुछ बूँदें ढुलक आती हैं।)

।।पटाक्षेप।।

– श्रीमती रूपवती 'किरण'

बैरी हो वह भी उपकार करने से मित्र बनता है, इस कारण जिसको दान-सम्मान आदि दिये जाते हैं वह शत्रु भी अपना अत्यंत प्रिय मित्र बन जाता है तथा पुत्र भी इच्छित भोग रोकने से तथा अपमान-तिरस्कार आदि करने से क्षणमात्र में अपना शत्रु हो जाता है। अतः संसार में कोई किसी का मित्र अथवा शत्रु नहीं है। कार्य अनुसार शत्रुपना और मित्रपना प्रगट होता है। स्वजनपना, परजनपना, शत्रुपना, मित्रपना जीव का स्वभावतः किसी के साथ नहीं है। उपकार-अपकार की अपेक्षा से मित्रपना-शत्रुपना जानना। वस्तुतः कोई किसी का शत्रु-मित्र नहीं है। अतः किसी के प्रति राग-द्वेष करना उचित नहीं है।

– श्री भगवती आराधना, आचार्य शिवकोटि

जय गोम्मटेश्वर

पात्रानुक्रमणिका

दिगम्बर जैन साधु	–	आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
मैसूर के सेनापति	–	चामुण्डराय
चामुण्डराय की माता	–	काल्ललदेवी
शिल्पी गण मूर्तिकार	–	रामास्वामी, कृष्णास्वामी, कन्नप्पा, एलप्पा
सेवक	–	दासप्पा
भक्ति विह्वल बालक	–	सुन्दरम्
अन्य	–	पुजारी तथा अन्य व्यक्ति

दृश्य प्रथम

स्थान : वन प्रान्तर

(सघन वन के विस्तृत भूभाग में तंबू गड़े हैं। समीप ही एक शिला पर आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ध्यानस्थ हैं। चामुण्डराय वहीं प्रतिक्षारत हैं। चंद क्षणों के पश्चात् ॐ णमो सिद्धाणं का उच्चारण करते हुये आचार्य श्री ध्यान समाप्त करते हैं। चामुण्डराय नमस्कार कर समीप बैठ जाते हैं।)

नेमिचन्द्र – शुद्धात्म लाभ हो चामुण्डराय ! क्या बात है ? व्यग्र से दिखाई दे रहे हो।

चामुण्डराय – आपसे परामर्श चाहता हूँ गुरुदेव ! हम किस दिशा में चलकर आपके उद्देश्य की पूर्ति कर सकेंगे ?

एक माह की यात्रा के पश्चात् भी भगवान बाहुबली की प्रतिमा के कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहे।

नेमिचन्द्र – चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। अब हमें अपनी यात्रा स्थगित कर देना है।

चामुण्डराय – (जैसे भूल हो गई हो) नहीं, नहीं गुरुदेव ! मेरा प्रयोजन कदापि यह नहीं था।

नेमिचन्द्र – (मुस्कराते हुए) यह हमारा अपना निर्णय है, चामुण्डराय!

चामुण्डराय – निर्णय किस आधार पर ले रहे हैं आप ?

नेमिचन्द्र – ले नहीं रहे, ले चुके हैं वत्स ! तुम अपनी बात पूरी करो। क्या कहना चाहते थे ?

चामुण्डराय – गुरुदेव ! आज उषाकाल में मैंने एक विलक्षण स्वप्न देखा है। तेजस्वी महिला हमारे शकट (रथ) के सम्मुख खड़ी हो पथ रोक कर कह रही है कि तुम लौट जाओ। आगे बढ़ने का दुस्साहस मत करो। यह अरण्य मानवगम्य नहीं है।

(माता काललदेवी आकर पुत्र की बात सुनने लगती हैं।)

काललदेवी – ऐसी शंका क्यों कर रहे हो वत्स ! यात्रा से तुम क्लांत हो गये हो ? अतएव अब चेतन मन की कल्पना नयनों में साकार हो आई है। तुम लौट सकते हो। पर मेरी यात्रा तो भगवान बाहुबली के चरणों में ही विराम लेगी।

चामुण्डराय – मुझ पर इतना अविश्वास क्यों माँ श्री ! दर्शनाभिलाषा जितनी आपकी बलबती है, मेरी उत्कण्ठा उससे न्यून नहीं। इस पवित्र लक्ष्य हेतु ऐसी यात्रा वर्षों करना पड़े, तब भी मैं पीछे हटने वाला नहीं हूँ। संकल्प का धनी है चामुण्डराय।

काललदेवी – किन्तु चौरासी युद्धों का विजेता, वीरमार्तण्ड, समरधुरन्धर, वैरीकुलकालदण्ड के संकल्प ने घुटने टेक दिये एक तुच्छ स्वप्न के सम्मुख, जबकि स्वप्न कभी सत्य नहीं होते।

नेमिचन्द्र – काललदेवी! चामुण्डराय का स्वप्न सुखद भविष्य की सूचना दे रहा है। हमारे निमित्त ज्ञान से भी यात्रा स्थगित करने की पुष्टि होती है।

काललदेवी – आप भी ऐसा कह रहे हैं गुरुदेव ! क्या हम बिना दर्शन किये लौट जायेंगे।

नेमिचन्द्र – लौटना ही होगा काललदेवी ! सब मनोरथ पूर्ण नहीं होते।

काललदेवी – पर मेरी प्रतिज्ञा है कि पोदनपुरम् में भरतेश्वर द्वारा निर्मित मूर्ति के दर्शन करूँगी। अन्यथा नीरस भोजन ग्रहण करूँगी।

नेमिचन्द्र – आचार्य जिनसेन ने प्रतिमा का जो रोचक वर्णन प्रस्तुत किया था, वह सुनकर तो हमारा अंतर भी लालायित हो उठा था दर्शन करने का।

काललदेवी – गुरुदेव ! ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके पावन दर्शन किये बिना यह मानव जीवन निस्सार है।

चामुण्डराय – और आचार्यश्री के बार-बार सावधान करने पर भी कि यह वन अगम्य है। हमने यात्रा का निश्चय कर ही लिया। उत्साह के साथ माँ श्री की प्रतिज्ञा ने मुझे विचार करने का अवकाश नहीं दिया।

नेमिचन्द्र – हम भी दर्शनाभिलाषा से तुम्हारी यात्रा में सम्मिलित हो गये। आचार्यश्री ने यह भी कहा था कि उस मूर्ति को असंख्य कुक्कुट-सर्पों ने घेर लिया है। इसी कारण उसका नाम कुक्कुटेश्वर भी पड़ गया था।

काललदेवी – कुक्कुट सर्प सर्पों की ही एक जाति होती होगी ?

नेमिचन्द्र – नहीं, वे एक प्रकार के पक्षी होते हैं। उनका सिर सर्प जैसा होता है। परन्तु वे भयानक होते हैं।

चामुण्डराय – ऐसे कोई विचित्र पक्षी अभी तक दृष्टि गोचर नहीं हुए और यात्रा भी अधूरी छोड़कर हम लौट रहे हैं। वैसे मेरा यह अभिमत है कि प्रत्येक कार्य प्रयत्न-साध्य है। दृढ़ संकल्प ही लक्ष्य सिद्धि का एकमेव मार्ग है।

काललदेवी – मुझे भी पूर्ण विश्वास था कि हमारी यात्रा सफल होगी। परन्तु प्रबलतम दृढ़ता के पश्चात् भी निराशाजनक स्थिति उत्पन्न हो गई।

नेमिचन्द्र – सांसारिक कार्यों में पग-पग पर बाधाएँ एवं प्रतिकूलताएँ हैं देवी कालल ! अनुकूलताओं की प्राप्ति हो जाना आश्चर्यजनक है।

काललदेवी – पर ये तो धार्मिक कार्य है गुरुदेव !

नेमिचन्द्र – नहीं, जो आत्मा से भिन्न है, वह परद्रव्य है एवं परद्रव्य

के आश्रित जो भी कार्य या क्रियाएँ होगीं, वे धार्मिक नहीं होतीं।

चामुण्डराय – तो क्या ये पाप क्रिया है ?

नेमिचन्द्र – नहीं, यह आवश्यक नहीं कि जो अधार्मिक हैं, वे सब पाप क्रियाएँ ही हों; पुण्य क्रियाएँ भी होती हैं।

काललदेवी – तब फिर हमें तीर्थयात्राएँ नहीं करनी चाहिए ? पर इस यात्रा में तो आप भी सम्मिलित हैं गुरुदेव !

नेमिचन्द्र – भौतिकवादी करता है, आत्माभिमुखी से होती है। तुम्हीं बताओ हम सब गोम्मटेश्वर के दर्शनार्थ जा रहे हैं। हमें वहाँ पहुँचना था। मार्ग में पड़ाव डालने की क्या आवश्यकता थी ?

चामुण्डराय – यह तो अनिवार्य था गुरुदेव ! ऐसा कोई त्वरित गतिमान वाहन नहीं कि हम सीधे वहीं पहुँच जाते।

काललदेवी – आकांक्षा तो यही है कि उड़कर दूसरे ही क्षण पहुँच जावें। पर यह संभव जो नहीं है। यद्यपि रुकने के समय गंवाने में मन खिन्न ही होता है।

नेमिचन्द्र – बस यह बात मुमुक्षु की होती है। जब तक उसका पुरुषार्थ उग्र-उग्रतम हो स्वस्थित नहीं होता; तब तक वह क्रमशः दया, दान, पूजादि अथवा व्रत, समिति, गुप्तिरूप क्रियाओं में प्रवृत्त होता है।

चामुण्डराय – अर्थात् प्रवृत्त होना उसका लक्ष्य नहीं, विवशता है। भलीभाँति समझ गया गुरुदेव !

काललदेवी – तब धार्मिक क्रियाएँ कैसी होती हैं गुरुदेव ?

नेमिचन्द्र – धर्म अर्थात् स्वभाव। आत्मा का स्वभाव है ज्ञायकपना; ज्ञान में केन्द्रित हो जाना। आत्मा स्व में प्रतिष्ठित हो जाये, यह उसकी धार्मिक क्रिया है एवं राग-द्वेषादि रूप विकृत होना अधार्मिक है।

सेवक – स्वामिन् ! चलने की पूर्ण व्यवस्था हो गई है, शकट तैयार हैं, केवल तंबू उखाड़ना है। आप जैसा आदेश दें।

चामुण्डराय – तंबू भी उखाड़ लो, हमें शीघ्र चलना है।

नेमिचन्द्र – (काललदेवी को उदास देख) काललदेवी ! उदास न हो, तुम्हारा वीर पुत्र सामर्थ्यवान है। वह भगवान बाहुबली की मूर्ति का निर्माण करा कर तुम्हें दर्शन-लाभ करा सकता है।

चामुण्डराय – (अत्यंत आनंदित हो) क्या यह संभव है ? आशीर्वाद दें गुरुदेव कि आपके वचनों को साकार कर सकूँ।

नेमिचन्द्र – हमारा आशीर्वाद है वत्स ! तुम अवश्य कृतकार्य होगे।

काललदेवी – गुरुदेव ! क्या विशालकाय प्रतिमा बन सकेगी ?

अदृश्यस्वर – (गंभीर स्वर में) आप निश्चिंत रहें काललदेवी ! चामुण्डराय के द्वारा विशालकाय भव्य अद्वितीय मूर्ति का निर्माण होने वाला है, जो भारत में नहीं; अपितु समस्त विश्व में अनुपमेय होगी।

चामुण्डराय ! तुम शीघ्र श्रवणवेलगोला लौट कर चन्द्रगिरि की चोटी से इन्द्रगिरि पर शर संधान करो। बाण संस्पर्शित शिला वीतराग मूर्ति के उपयुक्त होगी। जाओ नि:शंक हो कार्य करो।

नेमिचन्द्र – लो शंका की संभावना समाप्त हो गई। कोई जिन शासन भक्त देव का स्वर है।

काललदेवी – इनकी भविष्यवाणी क्या सत्य होती है गुरुदेव !

नेमिचन्द्र – नि:संदेह, वे अवधिज्ञानी होते हैं। अब पवित्र कार्य करने में अनावश्यक विलम्ब अपेक्षणीय नहीं।

(सब खड़े हो जाते हैं, सेवक आता है।)

सेवक – स्वामी ! तूंबू उखाड़ लिये गये हैं।

चामुण्डराय – दासप्पा ! शकटों का मुख अपने नगर की ओर मोड़ दिया जाये।

सेवक – (विस्मय हो) नगर की ओर ?

काललदेवी – (स्नेह पूर्वक) हाँ दासप्पा ! अब हम अपने नगर लौट रहे हैं। आगे नहीं जाएँगे। (पटाक्षेप)

दृश्य द्वितीय

समय : सूर्योदय काल, स्थान : इन्द्रगिरि

(एक भव्य विशालकाय खड्गासन भगवान बाहुबली की प्रतिमा दिखाई दे रही है। आज मूर्ति का महामस्तकाभिषेकोत्सव होने जा रहा है। दोनों ओर लकड़ी का मचान बना रखा है। एक ओर उच्च काष्ठासन रखा है। सूर्योदय हो रहा है। कतिपय शिल्पी मंदिर के प्रांगण में चर्चा कर रहे हैं।

रामास्वामी – बंधुओ ! अत्यंत हर्ष है कि आज हमारी कठिन साधना फलवती हुई है।

कन्नप्पा – इतनी वृहदाकार सुरम्य मूर्ति अभी तक किसी शिल्पी ने कहीं नहीं गढ़ी।

रामास्वामी – तुम्हारा कथन यद्यपि सत्य है कन्नप्पा ! तथापि अभिमान उचित नहीं। यह ऐसा महाविष है, जो मानव को पतन के गर्त्त में ला पटकता है।

एलप्पा – यथार्थ है बंधु ! हमने जिस महा मानव की मूर्ति गढ़ी है, उसके जीवन से यही सीख मिली है कि द्रेवों के द्वारा सेवनीय नवनिधि चौदह रत्न का अधिपति षट्खण्ड विजेता चक्रवर्ती सा असाधारण मानव साधारण मानव से एक अभिमान के कारण पराजित हो जाता है।

कृष्णास्वामी – अभिमानी को धूल चाटनी पड़ती है।

रामास्वामी – और स्वाभिमानी परंतु विनम्र बाहुबली की विलक्षणता देखो कि भौतिकवाद को पराजित करके भी ज्येष्ठ भ्राता का सम्मान अक्षुण्ण रख उन्हें भूमि पर पटकने की अपेक्षा कंधों पर बैठा लिया।

एलप्पा – एक क्षण पूर्व के बाहुबली दूसरे ही क्षण सावधान हो गए थे। उन्हें विश्व की समस्त आत्माओं की समानता की सुधि हो आई। तत्काल वे अपने मनोविकारों को परास्त कर निर्मल चित्त चैतन्य ज्योति जगा तीन लोक के ऊपर उठ गए।

कन्नप्पा – मुझसे भूल हुई बन्धु ! क्षमा करें। हम शिल्पी कठोर पाषाण को मृदु बना उसे भगवान बना सकते हैं, तो हम मानव स्वयं भी भगवान बन सकते हैं।

रामास्वामी – अतिसुन्दर बन्धु ! कन्नप्पा स्वामी चामुण्डराय तो कहते हैं कि जैनधर्म तो सबमें भगवत्ता के दर्शन करता है। हमें वही तो प्रकट करना है, जो असंभव नहीं प्रयत्नसाध्य है।

एलप्पा – सच पूछो तो हमने मूर्ति का निर्माण ही कहाँ किया ? हमारी छैनी मूर्ति पर लगे व्यर्थ के पाषाण को तराशती रही है। अत: पाषाण में छुपी मूर्ति प्रकट हो गई।

रामास्वामी – पाषाण में वीतराग मूर्ति का निर्माण करते-करते भगवान बनने का सूत्र हाथ लग गया है। हमारा अंतर वीतरागता से पावन हो गया है।

(शनै: शनै: जन समुदाय जयघोष करता हुआ एकत्रित होने लगा है। चामुण्डराय एवं उनकी माँ काललदेवी आ गई हैं। आचार्य श्री नेमिचन्द्र भी आते हैं। उन्हें काष्ठासन पर आदर पूर्वक बैठाकर चामुण्डराय नमस्कार करते हैं। पुजारी भी अक्षत थाल लिए आ रहा है।)

काललदेवी – गुरुदेव ! मूर्ति के दर्शन कर आज हृदय गद्गद् हो रहा है। कल्पनातीत यह मूर्ति बनी है। मेरी इच्छा पूर्ण हुई है।

नेमिचन्द्र – आज का दिन धन्य है काललदेवी ! प्रतीत होता है जैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय प्रतिमा में साकार हो आया है।

काललदेवी – बीजरूप रत्नत्रय की आप में भी अभिव्यक्ति हो चुकी है गुरुदेव! अब हम अज्ञानियों की बारी है।

नेमिचन्द्र – आत्मरुचि को जागृत करो काललदेवी ! तभी धर्म का प्रारंभ हो सकेगा।

चामुण्डराय – अवश्यमेव आचार्यश्री ! शेष जीवन आत्म-कल्याण में ही नि:शेष करूँगा।

नेमिचन्द्र – हमें ऐसी ही आशा है। 'जे कम्मे शूरा, ते धम्मे शूरा'।

चामुण्डराय – (खड़े होकर संबोधित करते हुए) मूर्ति के कुशल शिल्पियो ! एक बार आपसे और अंतिम निवेदन करना चाहता हूँ। शिल्पिगण ध्यान से सुनें।

रामास्वामी – आदेश दें श्रीमान् ! हम सब प्रस्तुत हैं।

चामुण्डराय – प्राण-प्रतिष्ठा के पूर्व एक बार और आप सब मूर्ति का भलीभाँति पुनर्निरीक्षण कर लें। अभी अवसर है मूर्ति की मनोज्ञता में कहीं अनावश्यक प्रस्तर बाधक हो तो उसे तराश कर प्रस्तर की तौल के हीरे भेंट स्वरूप ग्रहण करें।

रामास्वामी – राजन् ! मूर्ति निर्माण कार्य में आपने पारिश्रमिक के रूप में रजत मुद्राओं से लेकर स्वर्ण जवाहरात तक लुटाएँ हैं। हमने मनों द्रव्य प्राप्त किया है, रत्न झोली भर-भर पाए हैं। अब आप हीरे तो क्या अपना राज्य भी दें तो भी मूर्ति में तराशने की तनिक भी संभावना नहीं है।

एलप्पा – माननीय महोदय ! बंधु रामास्वामी का कथन सर्वथा सत्य है। अब मूर्ति पर छैनी चलाना कला का अपमान किंवा स्वयं अपनी आत्मा का अनादर करना है।

कन्नप्पा – हमारा परम सौभाग्य है जो हमें देवाधिदेव परम वीतराग प्रभु की मूर्ति गढ़ने का कार्य मिला। हम सब गढ़ाई में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि भोजन-पान की भी सुधि नहीं आती थी।

कृष्णास्वामी – सच बात तो यह है कि आंशिक वीतरागता हममें भी जाग गई है। अब परिवार संपत्ति आदि में रस नहीं आता।

चामुण्डराय – आपके विचार अत्युत्तम हैं शिल्पिकारो ! हम आप सबको साधुवाद देते हैं।

रामास्वामी – यह श्रेय आपको ही है महानुभाव ! आपने भगवान बाहुबली का जीवन परिचय दिया कि वे मोह-ममता की डोर तोड़ सन्यस्त हो गए। उनकी यह निस्पृहता हमारे अंतस्तल को छू गई। हम आत्मविभोर हो गए।

चामुण्डराय – फलस्वरूप आप इतनी सुंदर हृदयहारणी प्रतिमा का निर्माण कर सके हैं।

एलप्पा – जिनशासन का मूलमंत्र राग-द्वेष रहित शुद्धात्मा के समता परिणामों को आत्मसात् करने के सतत् आभास ने भगवत्ता को उत्कीर्ण करने में महती सहायता दी है।

चामुण्डराय – अति सुन्दर ! (अंजलि भर हीरे उन्हें देते हुए) पुरस्कार स्वरूप ये हीरे ग्रहण करें।

रामास्वामी – श्रीमान् ! परम पवित्र निरंजन निर्विकार वीतराग प्रभु के दर्शन कर आनंद सिंधु में अन्य समस्त साधें विसर्जित हो चुकी हैं।

चामुण्डराय – आर्य राधास्वामी ! सम्मान स्वरूप भेंट लेने में आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

रामास्वामी – धृष्टता क्षमा करें महोदय !

चामुण्डराय – आर्य कन्नप्पा, एलप्पा, कृष्णास्वामी ! आप रामास्वामी के सहायक रहे हैं। आप यह भेंट स्वीकार करें।

कृष्णास्वामी – श्रीमान् ! 'हाथी के पांव में सबके पांव'। बन्धु रामास्वामी का निर्णय हम सबका निर्णय है।

कन्नप्पा – अब तो आप हमें सम्मति दें, ताकि हम भी अपने में विद्यमान प्रभुता प्रकट कर सकें।

एलप्पा – बन्धु कन्नप्पा ! जैसे इस वृहद् पाषाण में छिपी प्रतिमा की अभिव्यक्ति हुई है, वैसे ही शरीर के भीतर छुपी आत्मशक्ति को हमें व्यक्त कर लेना है।

चामुण्डराय – धन्य हैं एलप्पा ! जो आपने धर्म के मर्म को पहिचाना। जैनधर्म में आत्मोद्धार का मार्ग विश्व के समस्त प्राणियों के लिए उन्मुक्त है। (पण्डितजी से) पण्डितजी ! मस्तकाभिषेक की विधि प्रारंभ करें।

पण्डितजी – जी, बंधुओ ! माताओ ! सभी हमारे साथ महामंत्र णमोकार पढ़ेंगे। *(पण्डितजी के साथ समवेत स्वर उभर आते हैं)*

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।..........

चामुण्डराय एवं मल्लिषेण ! आप दोनों कलश लेकर दोनों ओर से भगवान का अभिषेक करें। तत्पश्चात् बारी-बारी से अन्य सज्जन भी इस क्रम से अभिषेक करेंगे। हम मंत्र पढ़ते जाएँगे।

(अभिषेक प्रारंभ हो जाता है। जनसमूह के जयघोष की तुमुल ध्वनि में पण्डितजी की मंत्रध्वनि डूब जाती है। सब अपने-अपने कलश में जल लाकर अभिषेक कर रहे हैं। सभी को अभिषेक हेतु जल्दी है, अतः जल्दी आगे बढ़ने का उपक्रम कर रहे हैं।)

पण्डितजी – बंधुओ ! शान्ति रखें। सबको अभिषेक का अवसर मिलेगा। जो बन्धु अभिषेक कर चुके हैं, वे कृपया बैठ जाएँ।

(कतिपय सज्जन बैठ जाते हैं। कार्यक्रम यथावत् चल रहा है। एक छोटा बालक अपना छोटा सा कलश लिए अभिषेक करने की अभिलाषा लिए आगे बढ़ता है। परन्तु जनसमूह उसे पीछे ठेल देता है। एक सज्जन का धक्का खाकर वह गिर पड़ता है, किन्तु कलश का जल गिरने नहीं देता। पर निराश होकर एक ओर खड़ा होकर रोने लगता है।)

एक सज्जन – बालक ! क्यों रो रहे हो ?

बालक – मुझे अभिषेक करना है भगवान का ! मेरी माँ रुग्ण है। घर में कोई और है नहीं, अस्तु मैं आया हूँ। माँ ने मुझे भेजा है।

एक सज्जन – तुम छोटे हो वत्स !

बालक – (रोते हुए) तो क्या छोटे अभिषेक नहीं करते ?

दूसरे सज्जन – कलश का जल फेंक दो। माँ से बोल देना कि अभिषेक कर आया हूँ।

बालक – आप इतने बड़े होकर असत्य बोलने को कह रहे हैं ?

एक सज्जन – नहीं बेटे ! तुम्हारी माँ के संतोष के लिए कह रहा हूँ।

बालक – परन्तु बिना अभिषेक किए मुझे संतोष कैसे होगा ? फिर असत्य बोलना भी तो उचित नहीं है। मेरी माँ कहती है अच्छे बालक असत्य नहीं बोलते।

दूसरे सज्जन – इतने विशाल समूह में तुम्हें अभिषेक करने को नहीं मिलेगा। तुम देखकर ही संतोष करो। (बालक उदास हो चुपचाप खड़ा हो जाता है।)

चामुण्डराय – पण्डितजी ! मनो जल का अभिषेक हो गया, परन्तु आश्चर्य है कि प्रभु का वक्षस्थल अभिषिक्त नहीं हुआ ?

पण्डितजी – प्रतिमा विशाल है श्रीमान्। शनैः शनैः.........

नेमिचन्द्र – (बीच ही में) ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कहीं श्रद्धा में किञ्चित् न्यूनता हो ? चामुण्डराय ! मन को निर्मल करो। कदाचित् अनजाने ही तुम्हारे अन्तर में ऐसी भावना प्रविष्ट हो गई हो कि इस मूर्ति का निर्माता मैं हूँ। यह शूल सी शल्य निकाल फेंकना मांगलिक है।

चामुण्डराय – अभिमान तो नहीं आचार्यश्री, पर ऐसी भावना अस्वाभाविक भी नहीं है।

(आचार्य नेमिचन्द्र नेत्र बंदकर ध्यानस्थ हो जाते हैं। सब शांत हो उनके मुखारविंद से सुनने को उत्सुक हैं) चंद क्षणों पश्चात् –

नेमिचन्द्र – (नेत्रोन्मीलित कर) चामुण्डराय ! इस विशाल जनसमूह में अत्यंत श्रद्धाभिभूत एक बालक प्रभु के अभिषेक से वंचित है। उस निश्छल सरल मन बालक के हाथों अभिषेक हुए बिना यह मंगल कार्य संपन्न नहीं होगा।

चामुण्डराय – आपके मार्गदर्शनानुसार ही कार्य होगा गुरुदेव ! (जनसमूह से) महानुभावो ! आपको अपने समीप कोई बालक दिखे तो बतलाएँ।

एक सज्जन – श्रीमान् ! दीर्घ समय से प्रतीक्षारत ये बालक अभिषेक करने के लिए अत्यंत लालायित है।

चामुण्डराय – स्वयं सेवक ! बालक को यहाँ ले आओ।

(एक स्वयं सेवक तुरन्त बालक को पहुँचा देता है।)

चामुण्डराय – (स्नेह पूर्वक) आयुष्मान् ! क्या नाम है तुम्हारा ?

बालक – सुंदरम्, महोदय !

चामुण्डराय – अभिषेक करोगे सुंदरम् ?

बालक – अवश्य, इसीलिए आया हूँ। माँ ने कलश में जल भी भर दिया है।

चामुण्डराय – तुम्हारी माँ नहीं आयी ?

बालक – नहीं, वे रुग्ण हैं।

चामुण्डराय – अच्छा, आओ अभिषेक करो।

(चामुण्डराय स्वयं बालक को मचान पर चढ़ाते हैं। सुंदरम् ज्यों ही अभिषेक करता है, त्यों ही मूर्ति सम्पूर्णतः अभिषिक्त हो जाती है। जय भगवान बाहुबली, जय गुरुदेव, जय गोम्मटेश्वर का जयनाद गूंज उठता है।)

काललदेवी – यह है सच्ची भक्ति ! घटघट ऐसी पवित्रता से अभिभूत हो जाए। धन्य है सुंदरम् ! धन्य है बेटे ! समवेत स्वर में जयघोष का स्वर गूंजता है। (पटाक्षेप)

– **श्रीमती रूपवती 'किरण'**

बात बहुत पुरानी है– एक शिष्य-गुरु थे। गुरुजी को कहीं से एक सोने की ईंट मिल गई। गुरुजी आगे चलते जाते और शिष्य पीछे-पीछे चलता। शिष्य अपने सिर पर वह सोने की ईंट रखे हुए था। जहाँ पर जंगल आवे गुरु, शिष्य से कहे कि जरा सम्भल कर चलना। चलने में पैरों की ज्यादा आवाज नहीं हो, पत्तियों पर पैर रख कर नहीं चलना। इसप्रकार वह गुरु डरता जाता था और शिष्य को परेशान करता जाता था। शिष्य ने सोचा कि इस विडम्बना से हम कैसे छूटें। हमें एक तो यह ईंट लादनी पड़ती है। दूसरे गुरुजी....। सो एक बार मार्ग में शिष्य ने धीरे से उस ईंट को कुएँ में पटक दिया। आगे फिर जंगल मिला तो गुरु कहता है – बच्चा, धीरे-धीरे आना तो शिष्य बोला महाराज डर को तो मैंने कुएँ में पटक दिया। आप अब खूब आराम से चलो।... **तो डर किसमें है, मोह-ममता में...**। सो भईया सब डर का कारण मोह-ममता ही है। यदि मोह न हो तो किसी प्रकार का डर नहीं है। शरीर का मोह है, हाय हम मर न जायें। तो यहाँ पर यह डर लग गया, क्योंकि उसके मरने का भय लग गया। यदि ऐसा विचार बने कि "मैं तो ज्ञान मात्र हूँ।" मैं कभी असत् हो ही नहीं सकता, तो फिर अपने शुद्ध स्वरूप पर दृष्टि होने के कारण सारा डर खत्म हो गया, अमर हो गया। मरने वगैरह का फिर कुछ भी भय नहीं रहा। किसी कल्पनागत बाहरी चीजों में कभी भी सुख नहीं मिल सकता।

– **दृष्टांत प्रकाश से साभार**

उत्तराधिकारी की खोज

बहुत समय पुरानी बात है, किसी राज्य में एक राजा राज्य करता था। वह राजा न्यायप्रिय, प्रजापालक, कर्त्तव्यनिष्ठ आदि अनेक गुणों से सम्पन्न था। उसकी ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था थी। वह प्रत्येक कार्य ईश्वर को साक्षी मान के करता था। उसकी मान्यता थी कि भगवान तीन लोक और तीन काल की समस्त बातें एक साथ एक समय में जानते हैं। यदि कदाचित् मैं कोई चोरी छुपे कार्य करूँगा तो उसे भगवान सर्वज्ञ होने से जान ही लेंगे, चाहे जनता न जान पाए। अत: वह नीतिपूर्वक ही राज्य करता।

ऐसे योग्य राजा के दुर्भाग्य से कोई संतान न थी। वह चिन्तित था कि इस राज्य का उत्तराधिकारी किसे चुने। यदि वह किसी को भी उत्तराधिकारी बना दे और कदाचित् वह न्यायप्रिय, प्रजापालक और आस्तिक न हुआ तो समस्त जनता दुःखी हो जावेगी, वह स्वयं निन्दा का पात्र बन जायेगा। ऐसे विचारों से वह निरन्तर चिन्तित रहने लगा।

वह वृद्ध भी हो चला था। उसे राज्य का भार भारी लगने लगा था। वह शीघ्र ही किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाकर संन्यास लेना चाहता था। उसने मन्त्रियों से सलाह ली – किसे उत्तराधिकारी चुनें। किसी ने राजा के निकटतम सम्बन्धी को, किसी ने स्वयं को ही, किसी ने अपने पुत्र को, किसी ने अपने सम्बन्धी को राजा बनाने की बात कही। राजा को किसी की बात पसंद न आई। राजा इस समस्या का हल खोजने के लिए कुछ न कुछ विचार करता रहता था। आखिर उसे एक दिन इस समस्या का हल मिल ही गया।

राजा ने अपने समस्त राज्य में घोषणा करा दी कि जो भी राजा बनना चाहता हो वह अपना नाम एक सप्ताह के अन्दर भेज दे। एक सप्ताह में सैंकड़ों उम्मीदवारों के नाम राजा के पास पहुँच गये। राजा ने उन सबको आमंत्रित किया। उन सबकी परीक्षा ली। राजा ने सबको आधे-आधे फुट की एक-एक लकड़ी दे दी और कहा – "तुम ऐसी जगह जाकर इस लकड़ी के दो

टुकड़े करके ले आओ, जहाँ लकड़ी के टुकड़े करते हुए कोई न देखता हो। मैं इसी परीक्षा के आधार पर ही अपने उत्तराधिकारी का चयन करूँगा।''

सब लकड़ी को तोड़ने के लिए तितर-बितर हो गये। कोई एकान्त कमरे में जाकर कोई कोने में जाकर, कोई एकदम शान्त एकान्त जगह जाकर लकड़ी को तोड़कर शीघ्र ले आये। सबने राजा को टुकड़े दिखा दिये; परन्तु उन सब में एक व्यक्ति नहीं लौटा था। उसे काफी देर हो गई थी, सूर्यास्त भी होने वाला था, पर वह न लौटा। सबने राजा से निवेदन किया – राजा साहब....आप शीघ्र ही उत्तराधिकारी की घोषणा करो।

राजा ने कहा – अभी एक व्यक्ति आना शेष है। उसके आ जाने पर ही घोषणा करूँगा। तब सब कहने लगे कि वह आता तो कभी का आ जाता, अब वह आयेगा ही नहीं। आप तो घोषणा कर दो। राजा ने उनकी बात अस्वीकार कर दी और कहा – उसके आने पर ही घोषणा करूँगा। ऐसी चर्चा चल ही रही थी कि उसका आगमन हो गया। उसने राजा को वह लकड़ी बिना तोड़े ही ज्यों की त्यों वापिस थमा दी।

सबने आश्चर्य करते हुए उसकी हँसी उड़ाई। यह इतनी-सी लकड़ी तो तोड़ न सका और राजा बनने चला है। राजा ने मन में यह निश्चय कर लिया था कि यही राजा बनने के योग्य है। फिर भी उसकी सच्ची परीक्षा के लिए तेज स्वर में कहा – जब तुम इतने समय में इतनी-सी लकड़ी नहीं तोड़ पाए तब तुम राज्य क्या सम्भालोगे ? ये देखो....ये सबके सब कितने बुद्धिमान हैं जो शीघ्र ही लकड़ी के दो टुकड़े करके ले आये।

उस व्यक्ति ने अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहा – हे राजा साहब... आपने यदि लकड़ी के दो टुकड़े ही करने कहे होते तो मैं उसी क्षण करके दे देता, पर आपने यह कहा था कि इस लकड़ी के दो टुकड़े ऐसी जगह जाकर करके लाओ जहाँ इसके टुकड़े करते हुए कोई भी न देखता हो। मैं अनेक गाँव, नगर, जंगल में गया, पर कोई भी ऐसा स्थान न मिला जहाँ उसको तोड़ते हुए कोई देखता न हो। जहाँ भी तोड़ता वहाँ कोई मनुष्य या पशु भले न देखता हो, परन्तु वहाँ मैं स्वयं व भगवान (सर्वज्ञ) तो देख ही रहे थे। फिर मैं कैसे तोड़ सकता था ? यह आप ही बताइये।

राजा ने इसका कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया और कहा – आज रात्रि हो चली है सभी अपने-अपने घर जाओ, कल सभा लगेगी। उसमें विधिवत् उत्तराधिकारी की घोषणा करूँगा। आप में से ही किसी को उत्तराधिकारी बनना है।

सब अपने-अपने घर चले गये। सब अपने मन में राजा बनने की उत्सुकता लिए हुए रात भर सो न सके। प्रात: होने पर सभी सज-धजकर सभा में जा पहुँचे, जनता भी खचाखच दरबार में उपस्थित थी। सभी मंत्रीगण मंच पर उपस्थित थे। भगवान और राजा के अतिरिक्त किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि कौन राजा बनेगा ? कुछ ही देर में राजा मंच पर उपस्थित हुआ। उसने आते ही उस व्यक्ति को बुलाया जो बिना लकड़ी तोड़े ही वापस आ गया था। वह व्यक्ति मंच पर पहुँचा। राजा ने अपना मुकुट उसके मस्तक पर लगाया, उसे राज सिंहासन पर बैठाकर उसका राजतिलक कर दिया। उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा कर दी।

सभी दाँतों तले अंगुली दबाने लगे थे यहाँ तक कि उत्तराधिकारी भी। वह हैरत में पड़ गया था कि मुझे राजा कल क्या कह रहे थे और आज यह क्या कर रहे हैं। आखिर उससे न रहा गया। उसने समस्त जनता के समक्ष राजा से यह प्रश्न पूछ ही लिया – आपने उन सबको राजा न बनाकर मुझे ही क्यों राजा बनाया ?

राजा ने कहा – तुम इस योग्य हो। तुम कोई भी अनीतिपूर्वक कार्य नहीं कर सकते हो, क्योंकि तुम्हें यह भान है कि इसे देखने वाला भी कोई सर्वज्ञ है। शेष सबको राजा इसलिए नहीं बनाया कि वे सर्वज्ञ को जानते ही नहीं हैं। अत: कोई भी अनीतिपूर्वक कार्य करने में उन्हें संकोच नहीं होगा।

सबको राजा की बात बहुत पसंद आई। राजा ने यह सच्चा परीक्षण किया था। जनता ने राजा को साधुवाद दिया और नवीन राजा का अभिवादन कर उसे अपना राजा स्वीकार कर लिया। अब जनता को पूर्ववत् ही प्रजापालक, आस्तिक राजा मिल गया था, समस्त जनता खुश थी।

– डॉ. महावीरप्रसाद जैन

नीच से निर्ग्रन्थ

स्वरूपसिंह बचपने से गुजर रहा था, तभी उसके माता-पिता गुजर गये। वे गरीब थे। स्वरूपसिंह के कोई भाई-बहिन न था। वह जाति से क्षत्रिय था परन्तु वह परिस्थिति के मारे एक नीच हष्ट-पुष्ट भिखारी बन गया था। उसका क्षत्रियत्व न जाने कहाँ विलुप्त हो गया था। सचमुच उसे खबर ही नहीं थी कि मैं क्षत्रिय हूँ। उसे माँगकर पेट भरने में आनन्द आने लगा था। रोजाना प्रात: होती कि भीख मांगने निकल जाता। घर-घर जाकर भीख माँगते हुए कहता – "अरे बाई ! रोटी दे दो, मैं भूखा हूँ, आपका भला होगा। अरे माँ ! थोड़ा आटा ही दे दो। अरे सेठजी ! एक-दो पैसे दे दो न, आपका भला होगा। जब उसे कोई पेट भर भोजन करा देता तो उसे अनेक शुभकामनाएँ दे देता। वह उसे बड़ा परोपकारी मानता।"

वह इतना नीच था कि जब भी किसी से माँगता तो वह उससे लेकर ही रहता था। उसे अनेक लोगों की खरी-खोटी भी सुननी पड़ती थी। हष्ट-पुष्ट युवा होने से लोग उससे कहते – "कमाकर खाओ, भीख क्यों माँगते हो ?" उसे भीख माँगते-माँगते कितने वर्ष हो गए थे, वह लोगों की अनेक लताडे खाता रहता था, पर भीख माँगना न छोड़ता।

एक बार वह किसी दूसरे नगर में एक सज्जन सेठ के यहाँ भीख माँगने पहुँच गया। वहाँ कहने लगा – 'अरे ! कोई भूखे का पेट भरा दो, बड़ा भला होगा। सेठजी ने उसकी आवाज सुनी और बाहर आये। उन्होंने देखा कि हष्ट-पुष्ट युवक होकर भिखारी बनकर फिर रहा है। क्या यह भिखारीपन नहीं छोड़ सकता है ? ऐसा विचारकर सेठजी ने उससे कहा – 'मैं तुम्हें खाना नहीं खिला सकता हूँ। तुम कमाकर खाओ, कुछ काम करो, उससे जो धन प्राप्त हो उससे अपना पेट भरो।'

भिखारी ने कहा – 'बाबूजी ! काम कहाँ मिलता है ?

सेठजी ने कहा – तुझे मैं काम देता हूँ, तू आज से ही यहाँ रह, काम

कर और खा। एक बार तो भिखारी को बहुत बुरा लगा। कहने लगा – 'तू भिखारी नहीं, तू तो सेठ है।'

भिखारी ने आश्चर्य से पूछा – मैं सेठ हूँ ?

सेठजी ने कहा – हाँ।

भिखारी बोला – कैसे ?

सेठजी ने कहा – तू अपना भिखारीपन छोड़ दे और यहाँ काम करने लग जा।

भिखारी ने कठिनाई से अपने मन को समझाया और सेठजी की बात को स्वीकार करने का मानस बनाया और सेठजी से कहा – मैं आपके यहाँ काम करने को तैयार हूँ, पर आप मुझे धोखा मत देना, मेरा कोई सहारा नहीं है, मेरे तो ऊपर आकाश, नीचे धरती और मध्य में भिक्षा ही सहारा है। सेठजी ने कहा – परिश्रम का फल मीठा होता है, तुम परिश्रम करते रहना, मैं तुम्हें विश्वास देता हूँ कि तुम्हें कभी धोखा न दूँगा।

उसने सेठजी की बात मान ली। सेठजी ने उससे कहा – तू पहले स्नान कर ले। फिर मैं दूसरे कपड़े देता हूँ, पहन लो, खाना देता हूँ, खा लो। काम देता हूँ, वह करो। सेठजी के कहे अनुसार वह कार्य करने लगा, सेठजी के यहाँ बहुत नौकर थे उन्हें नौकर की जरूरत न थी, फिर भी उसे अपनी दुकान पर नौकर रख लिया। अब उससे प्रतिदिन काम लेते, खाना खिलाते और कुछ न कुछ समझाते रहते। वह काम करने में आलसी था। आखिर था तो भिखारी ही न। वह कुछ दिनों बाद जाने लगा, सेठजी ने समझाया तो वह रुक गया। सेठजी उसे नित्य कुछ न कुछ शिक्षा देते रहते थे, जिससे उसमें बहुत परिवर्तन आने लगा था। जब उसके एक माह पूरा हुआ और सेठजी ने उसे उसका वेतन दिया तो वह उछल पड़ा। वह सेठजी की प्रशंसा करने लगा – सचमुच आप सबसे बड़े परोपकारी हो। आपने मुझे प्रतिदिन दोनों समय खिलाया और धन भी दिया। सदा के लिए पेट भरने की कला भी सिखा दी।

सेठजी ने कहा – मैं कोई परोपकारी नहीं। तुमने जो मेहनत की, उसी का यह मीठा फल है। वह सेठजी के यहाँ तीन वर्ष तक रहा। वह व्यापार के सारे गूढ़ रहस्य समझ गया। उसने अपनी अच्छी साख बना ली थी। उसने नया व्यापार प्रारंभ करने का मानस बनाया। यह बात उसने सेठजी से कही। सेठजी ने बिना किसी बहानेबाजी के उसका व्यापार प्रारंभ करा दिया। अब वह भिखारी, नौकर न रहा था, अब सेठ बन गया था।

× × ×

एक दिन वह जंगल में भ्रमण करने गया। वहाँ उसने परमशांत मुद्रा के धारी, रत्नत्रय के धनी दिगम्बर मुनिराज को देखा। वे एक चट्टान पर आत्मध्यान कर रहे थे। उन्हें कुछ दूर से ही देखा और विचार आया – 'इसप्रकार यह कौन बैठा है ? न वस्त्र है, न शस्त्र है। मात्र कमण्डल-पीछी ही दिख रही है। मुद्रा भी कितनी परमशांत व सौम्य है। सचमुच यह कोई महान साधु होना चाहिए।' ऐसा विचार कर वह उनके निकट गया और उन्हें नमन कर बैठ गया। मुनिराज आत्मध्यान में लीन थे। वह उनकी परमशांत मुद्रा को निहारता रहा। वह मन में सोचने लगा – 'इनकी यह अवस्था कब छूटे और मैं पूछूँ कि आपने ऐसी अवस्था क्यों धारणकर रखी है तथा ऐसी कठिन तपस्या क्यों कर रहे हो ?'

मुनिराज का ध्यान टूटा और उन्होंने जैसे ही आँख खोली, उसने दोनों हाथ जोड़कर मुनिराज को प्रणाम किया। मुनिराज ने उसे 'धर्मवृद्धिऽस्तु' कहा। फिर पूछा – तुम कौन हो ?

उसने उत्तर दिया – मैं भिखारी था, फिर नौकर बना और अब मैं सेठ हूँ।

मुनिराज ने कहा – हे भाई ! तुम न भिखारी थे, न नौकर थे और न सेठ हो। तुम इन सबसे भिन्न वस्तु हो।

उसने कहा – मैं इनसे भिन्न कौन सी वस्तु हूँ महाराज ? आप ही बताइए।

मुनिराज ने उसकी जिज्ञासा और पात्रता जानकर कहा – तुम आत्मा हो। जो अमर है, शाश्वत है। तुम शुद्ध-बुद्ध एक त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा हो। मुनिराज ने कुछ और भी तत्त्व से भरी बातें उसे समझायीं।

वह मुनिराज की बात को काक-चेष्ठा, वकोध्यानम् की तरह सुन रहा था। उसने ऐसी बात पहले कभी नहीं सुनी थी। आज उसे लगने लगा था कि यह कोई अद्भुत बात है। उसने मुनिराज से अत्यन्त विनय के साथ प्रश्न किया – आपने ऐसी अवस्था क्यों धारण कर रखी है और ऐसी कठिन तपस्या क्यों कर रहे हैं ?

मुनिराज ने कहा – संसार दु:खों का सागर है। कहीं भी सुख दिखाई नहीं देता। संसार के दु:खों से छूटने के लिए और सुख की प्राप्ति के लिए यह निर्ग्रन्थ अवस्था धारण की है। यह कठिन तपस्या भी इसी हेतु से कर रहा हूँ।

उसने फिर प्रश्न किया – इससे सुख कैसे मिल सकता है ?

मुनिराज ने कहा – हे भाई ! इस नग्न अवस्था की कठिन तपस्या से सुख नहीं मिलता है। यह भी भिखारी, नौकर और सेठ की तरह एक क्षणिक अवस्था है। जब जीव स्वयं को पहिचानता है तभी वह सुखी होता है। अपने को जानकर पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति के लिए निर्ग्रन्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। जब निर्ग्रन्थ होकर जीव अपने को पहिचानता रहता है तो एक दिन वह ऐसी अवस्था छोड़कर भगवान बन जाता है।

मुनिराज की बातें सुनकर उसने कहा – मैं भी निर्ग्रन्थ बनना चाहता हूँ, मुझे भी इसकी विधि बताइये।

मुनिराज ने कहा – तुम आत्मा हो, इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो। न कुछ तुम्हारा है और न तुम किसी के हो। ऐसा यथार्थ श्रद्धान करो और स्वयं में लीन हो जाओ। यही निर्ग्रन्थ का मार्ग है। ऐसा कहकर मुनिराज पुन: आत्मलीन हो गये।

उसने मुनिराज की कही विधि पर अमल करना प्रारम्भ कर दिया। उसे घर, बाहर और दुकान आदि की कुछ सुध ही नहीं रही। वह इतना मग्न हो गया था जैसे रणभूमि में क्षत्रिय को लड़ते हुए उसे घर-बार की कुछ सुध नहीं रहती। मानो आज उसका विलुप्त हुआ क्षत्रियत्व जागृत हो गया हो।

वह आपको आपरूप जानने में लग गया। आखिर उसने आप को आपरूप जान ही लिया। यहाँ अब आनन्द का सरोवर उछल रहा था। आज तो उसके अनंत दु:खों का सागर समाप्त हो गया था। आज उसका स्वर्णिम दिवस था। वह निर्ग्रन्थ बनना चाहता था। मुनिराज की जब आत्मतल्लीनता की दशा छूटी तब उसने कहा – हे गुरुदेव ! वे सेठजी जिन्होंने मुझे बताया कि तू भिखारी नहीं, सेठ है और मुझे सेठ बनाया वे तो उपकारी हैं ही, पर आपने तो समझाया कि तू भिखारी, नौकर और सेठ नहीं भगवान आत्मा है और भगवान आत्मा को भगवान आत्मा बना दिया; अत: आप परमोपकारी हो। सच्चा उपकारी वही है जो अनंत दु:खों से छुड़ाकर अनंत सुखों को दिला देवे। आपने यही किया है; अत: आप परमोपकारी हैं। आप अब मुझे अपने जैसा बना लो। मुनिराज ने उसकी सम्पूर्ण स्थिति को समझ लिया था तब उसे मुनि का पूर्ण स्वरूप समझाया। जब उसे समझ में आ गया तब मुनिराज ने उसे मुनिदीक्षा दी। वह अब निर्ग्रन्थ बन गया था।

अहो ! धन्य हैं वे परमोपकारी मुनिराज !! जिन्होंने आप को आपरूप जाना और दूसरों को भी यही मार्ग दिखाया। अहो ! धन्य है वह जीव जो नीच से निर्ग्रन्थ बन गया। – **डॉ. महावीरप्रसाद जैन**

ग्रहण -त्याग

व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को व उनके भावों को, कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है। इसलिए उसका त्याग करना तथा निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है। किसी को किसी में नहीं मिलाता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। इसलिए उसका ग्रहण करना।

– मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ-२५१

卐 साहित्य प्रकाशन फण्ड 卐

५०१/-	दमयन्तीबेन हरीलाल शाह, मुम्बई
५०१/-	रमेशभाई अखेराज बुरिचा, मुम्बई
५०१/-	वासंती बेन छाबड़ा, मुम्बई
५०१/-	हंसुबेन जगदीश भाई लोदरिया, मुम्बई
५०१/-	सविता बेन रसिकभाई लोदरिया, मुम्बई
५०१/-	पुष्पाबेन भोपाल जैन, दिल्ली
५०१/-	श्री रमेशचन्द साकेत जैन, जयपुर
५०० /	भगवानदास राणा, जयपुर ह. ब्र. रमेशभाई सोनगढ़
२५१/-	जयमाला बेन, दिल्ली
२५१/-	श्री दुलीचन्द कमलेश कुमार गिड़िया, खैरागढ़
२५१/-	झनकारीबाई खेमराज बाफना चे. ट्रस्ट, खैरागढ़
२५१/-	श्री प्रेमचन्द जैन, ह.अभय कुमार जैन खैरागढ़
२५१/-	स्व. वसंतबेन मनहरलाल कोठारी, मुम्बई
२५१/-	इन्द्रजीत भाई अभय भाई, मुम्बई
२०१/-	श्रीमती ऊषा जैन अशोककुमार, सिवनी
२०१/-	श्रीमती कल्पना अनिल जैन, खैरागढ़
२०१/-	श्रीमती मनोरमा जैन विनोद कुमारजी, जयपुर
२०१/-	ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़
२०१/-	श्रीमती ढेलाबाई, ह.श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़
१५१/-	हर्ष धर्मेशभाई, कामदार हैदराबाद
१३०/-	श्रीमती स्र्वणा जैन, खैरागढ़
१०१/-	श्री महेन्द्र कुमार जी सिवनी
१०१/-	श्रीमती अनीता जैन कस्तूरचंद, नांदगांव
१०१/-	श्री पन्नालालजी छाजेड़, खैरागढ़
१०१/-	श्री पन्नालाल मनोज कुमार गिडिया, खैरागढ़
१०१/-	प्रीतिबेन जयंती लाल शाह, पालडी
१००/-	चम्पाबाई गुलावकर स्मृ. ह. अनिल वेलोकर

हमारे प्रकाशन

१.	चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी)	५०/-
	[५२८ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]	
२.	चौबीस तीर्थंकर महापुराण (गुजराती)	४०/-
	[४८३ पृष्ठीय प्रथमानुयोग का अद्वितीय सचित्र ग्रंथ]	
३.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १)	७/-
४.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग २)	७/-
५.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ३)	७/-
	(उक्त तीनों भागों में छोटी-छोटी कहानियों का अनुपम संग्रह है।)	
६.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ४) महासती अंजना	७/-
७.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ५) हनुमान चरित्र	७/-
८.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ६)	७/-
	(अकलंक-निकलंक चरित्र)	
९.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ७)	१२/-
	(अनुबद्धकेवली श्री जम्बूस्वामी)	
१०.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ८)	७/-
	(श्रावक की धर्मसाधना)	
११.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ९)	१०/-
	(तीर्थंकर भगवान महावीर)	
१२.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १०) कहानी संग्रह	७/-
१३.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग ११) कहानी संग्रह	७/-
१४.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १२) कहानी संग्रह	७/-
१५.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १३) कहानी संग्रह	७/-
१६.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १४) कहानी संग्रह	७/-
१७.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १५) कहानी संग्रह	७/-
१८.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १६) नाटक संग्रह	७/-
१९.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १७) कहानी संग्रह	७/-
२०.	जैनधर्म की कहानियाँ (भाग १८) क. व ना.संग्रह	७/-
२१.	अनुपम संकलन (लघु जिनवाणी संग्रह)	६/-
२२.	पाहुड़-दोहा, भव्यामृत-शतक व आत्मसाधना सूत्र	५/-
२३.	विराग सरिता (श्रीमद्जी की सूक्तियों का संकलन)	५/-
२४.	लघुतत्त्वस्फोट (गुजराती)	
२५.	भक्तामर प्रवचन (गुजराती)	
२६.	अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स)	१०/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
वीर संवत् 2451
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

सत्समागम
वीर-संवत् 2471
(पूज्य गुरुदेव श्री से)
राजकोट

देहविलय
8 दिसम्बर, 1987
पौष वदी3, सोनगढ़

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
वीर संवत् 2473
फागण सुदी 1
(उम्र 23 वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजास्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

मुद्रण व्यवस्था : जैन कम्प्यूटर्स, जयपुर मो. 09414717816 फैक्स : 0141-2709865